RNI : 66866/97

विश्व दीप दिव्य सन्देश

(मासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक : सार्वभौम जगतगुरु, महामण्डलेश्वर परमहंस योगीराज श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी

वर्ष-23 विक्रम संवत् – 2076 (जून-जुलाई-2019) अंक-1-2

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

RNI : 66866897

विश्व दीप दिव्य संदेश

(मासिक पत्रिका)

वर्ष – 23 | विक्रम संवत् – २०७६ | अङ्क–1–2 | जून–जुलाई, 2019

* प्रमुख संरक्षक *

परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी

परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

* प्रेरणास्रोत *

भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

* संस्थापक *

परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

* संरक्षक *

सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी

* परामर्शदाता *

पण्डित अनन्त शर्मा

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर

* प्रधान संपादक *

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

* संपादक *

सोहन लाल गर्ग

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

* सह–संपादक *

डॉ. रामदेव साहू

डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा

तिबोर कोकेनी

श्रीमती अन्या वुकादिन

* सहयोग *

डॉ. योगेश कुमार, नवीन जोशी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोडाला, जयपुर

website : vgda.in, Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Email : jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	Best Wishes		**3**
	सम्पादकीय		**5**
1.	उदार दृष्टि : हमारे धर्म की संजीवनी	महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री	7
2.	वास्तवे हिन्दुः कः	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर:	11
3.	श्रीविद्यायोगसाधना	प्रो. कमल चन्द्र योगी	15
4.	हिन्दू धर्म और स्वास्थ्य	डॉ शिवदत्त शर्मा	16
5.	देववाणी छन्दः मन्दाक्रान्ता	आचार्य महावीरप्रसाद शर्मा	19
6.	भारत के नौजवानों	कुमार संदीप	20
7.	Bhagavadgita: An extension of Vedic thought and philosophy	Dr. Renuka Rathore	21
8.	रक्षा सूत्र	वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	28
9.	निपातानां द्योतकत्वं वाचकत्वं वा	प्रो. श्रीधर मिश्रः	32
10.	कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्	डॉ. शालिनी सक्सेना	35
11.	प्रयाग एवं कुम्भ (रामचरित मानस के परिपेक्ष्य में)	पं. रमाशङ्कर गौड़	39
12.	वेदे संवत्सरविज्ञानम्	डॉ. दे.दयानाथः	43
13.	मेरा वतन	पं. नवीन जोशी	45
14.	हमारी अनुपम वैदिक संस्कृति	अधिवक्ता हरिशंकर पारीक	47
15.	भारतीय संस्कृति का आधार–धर्म, समन्वय और आचार	अधिवक्ता नवीन कुमार जग्गी	48
16.	श्रीकृष्ण अवतरण	राजेश चेतन	51
17.	नाभस योग	डॉ.सीमा शर्मा	52
18.	राजस्थानीयेषु आधुनिकसंस्कृतमहाकाव्येषु रामदेव चरितम् महाकाव्यम्	डॉ. योगेश कुमार शर्मा	56
19.	हिन्दू धर्म में योग की अवधारणा	सुश्री प्रिया सैनी	60
20.	कर्मन की गति न्यारी	श्रीमती अंजना शर्मा	62

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण : **आइडियल कम्प्यूटर सेन्टर**,3580 मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ❋ मो. 9829028926

Best wishes

Dear readers,

It is a great honour for me to be the part of the team that restarted the 'Vishwa Deep Divya Sandesh' magazine after almost twenty years. In this era of media overload to start, yet another magazine is very difficult. But still, we would like to share with all of you the things we do in our Research Centre. This magazine will have two forms, printed one and an online one. The online form is for scholars all over the world who could benefit from our work.

Our Gurudev Vishwaguru Paramhans Swami Maheshwaranandaji left India in the 1970s to teach yoga and the values of Vedic Culture in the west. In doing so, Yoga in Daily Life, the system was created and is now practised all over the world in more than 4500 centres. Although living and working in foreign countries for so long, he never forgot his roots. In 1990 he started building an Om Ashram, a building in the shape of Om, unique in the whole world in Jadan, Pali district of Rajasthan. In 2002 he also founded Yoga in Daily Life Foundation registered in New Delhi. Its branches are all over India, but main centres are in Jadan, Nipal and Bola Guda (Pali District), Kailash (Sikar), Badi Khatu and Kachriyavas (Nagaur) and Jaipur.

With the opening of Vishwaguru Deep Ashram Research Centre in 2016, a new page was turned in the life of the Foundation. Going to the roots of Indian Culture means to study Sanskrit and Vedas. Affiliation with Jagadguru Ramanandacharya Sanskrit Vishvavidyalaya transformed this idea into the practice. The world of Sanskrit literature is vast. Stretching from the time immemorial, the Vedas till today, the literature world is full of jewels. When I was asked what the Research Centre will do, I answered: "Everything!" How can I decide between Vyakarana, Jyotish, Darshana, literature and all other amazing topics? It is simple if it is in Sanskrit, it is for us. If nobody wants to do it, we shall. We also expanded to include all Indian languages, specially Marwari as the masters of our Parmapara wrote so many bhajans in Marwari.

I would kindly request all the readers who are interested in the promotion of Sanskrit

roots, Indian Culture, Vedas or any other topics to help us maintain this magazine with their articles.

I want to thank all professors who have been helping us and will help us in the future.

My special thanks go to Dr Dayananda Bhargava, Dr Kalanath Shastri, Pandit Anant Sharma and Dr Narayan Shastri Kankar for their support they gave me in the recent years. Not only they did not allow me to give up on Sanskrit, but they pushed me to cross my limits.

Naturally, I would like to express my endless gratitude to my Gurudev, Vishwaguru Swami Maheshwaranandaji without whom nothing of this would be possible.

Yours sincerely,
Mahamandaleshwar Swami Gyaneshwar Puri

सम्पादकीय

सभ्यता एवं संस्कृति सतत् प्रवाहमान जीवनधारायें हैं जो भारतीय दृष्टि से मानव के जीवनदर्शन का महत्त्वपूर्ण आधार रही हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आदर्श चिरन्तनकाल से विश्व मानव को अभिप्रेरित करते रहे हैं। भारत का सांस्कृतिक दिव्य सन्देश आज भी मानवीय चिन्तन को नया आयाम प्रदान करता है। ''विश्व दीप दिव्य सन्देश'' भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु कृतसंकल्प है। इसका यह अङ्क भारतीय अस्मिता, गौरव, ज्ञान के उन ज्ञात-अज्ञात पहलुओं को आपके समक्ष प्रस्तुत करता है जिनकी आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में भी सर्वाधिक अपेक्षा, आवश्यकता एवं उपादेयता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान के सन्दर्भ में पं. अनन्त शर्मा ने वेद, पुराण एवं मनुस्मृति के साक्ष्यों से यह सिद्ध किया है कि धर्म सबका आधार है। अतः उसकी अपेक्षा निश्चित रूप से मानव कल्याण एवं विश्व कल्याण के निमित्त नितान्त अपरिहार्य है। इस सन्दर्भ में वैदिक कर्मयोग का निरूपण करते हुए उन्होंने प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग को यथार्थतः समझाने की चेष्टा की है। श्रेयस् की सिद्धि इसी से सम्भव है तथा अभ्युदय के लिए वेदानुशासन की परम आवश्यकता है।

डॉ. शिवदत्त शर्मा ने प्राणिमात्र के स्वास्थ्य के सन्दर्भ में वेद के चिन्तन की छवि प्रस्तुत की है। दिनचर्या के नियमों की धर्म में प्राथमिकता के आधार पर भी भारतीयों के स्वास्थ्य चिन्तन की उत्कृष्टता को आपने प्रतिपादित किया है। अनेक धार्मिक उपादानों के उदाहरणों के माध्यम से आपने सिद्ध किया है कि स्वास्थ्य चेतना जनजीवन से सर्वदा संपृक्त विषय रहा है किन्तु वर्तमान में उसकी विशृंखलता ही यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अतः इस क्षेत्र में मानव मात्र को पर्याप्त सोचने एवं समझने की आवश्यकता है।

'वास्तवे हिन्दुः कः' शीर्ष कविता में डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर ने हिन्दुत्व के उच्चादर्शों से अवगत कराने हेतु सत्सन्दर्भित अपनी आत्मव्यथा की स्पष्ट एवं ओजमयी प्रस्तुति की है। आपके मत में हिन्दुत्व हीनत्व नहीं है। भारतीयता के पर्याय रूप में हिन्दुत्व को प्रतिष्ठापित किये जाने का औचित्य दर्शाते हुए आपने भारतीय संस्कृति का ही हिन्दु संस्कृति नाम से अभिहित किया है। संस्कृत के माध्यम से हिन्दुत्व के प्रचार-प्रसार से विश्व को नवीन दिशा प्राप्त होगी ऐसा आपका अभिमत लक्षित होता है।

धार्मिक उदारता के सन्दर्भ में महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री का लेख 'उदार सृष्टि : हमारे

धर्म की संजीवनी' अत्यन्त प्रेरणास्पद होने के साथ-साथ भारतीयता के संरक्षित बने रहने में स्वयं उसके स्वरूप की महत्ता को लक्षित करता है। धर्म के क्षेत्र की व्यापकता को प्राचीन काल से ही स्वीकार किया जाता रहा है। सुश्री प्रिया सैनी ने 'हिन्दु धर्म में योग की अवधारणा'' विषयक लेख में योग से धर्मसिद्धि का प्रतिपादन किया है अर्थात् धर्म के लिए भी योग की अपेक्षा है।

'रक्षासूत्र' लेख में पं. गोपीनाथ पारीक ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति की परम्परा का पल्लवन करने वाले पर्वोत्सवादि के रूढ स्वरूपों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए इस कड़ी में रक्षा बन्धन के महत्त्व को दर्शाने की चेष्टा की है। प्रोफसर कमलचन्द्र योगी द्वारा लिखित 'श्रीविद्यायोगसाधना' शीर्षक छन्दों में भारतीय तन्त्रविद्याओं की महत्ता एवं उसके अन्तर्गत श्रीतत्त्व की उपासना के गूढ रहस्यों का प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास किया है जो स्तुत्य एवं प्रशस्य है।

डॉ. शालिनी सक्सेना के 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' लेख में भारतीय धर्म एवं संस्कृति में स्वीकार्य अवतारवाद की प्रतिष्ठा के प्रति मानवीय श्रद्धा की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। अवतार के स्वरूप में ऐश्वर्य का अनुभव भी मानव कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है। भक्ति साधना के लिए भी यह एक स्वर्णिम सोपान है जिसके हृदयंगम करना सर्वाधिक उपयोगी प्रतीत होता है।

दिव्य संदेश के सभी लेख एवं कवितायें आपको भारतीय ज्ञानगरिमा का अवगाहन करने का अवसर प्रदान करती है। आशा है यह अंक आप सभी पाठकों को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगा।

–सम्पादक

उदार दृष्टि : हमारे धर्म की संजीवनी

महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री

हमारा यह धर्म विश्व के चार पाँच प्रमुख धर्मों में प्राचीनतम माना जाता है। अनुयायियों की जनसंख्या की दृष्टि से परिगणित विश्व के धर्मों में ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म या हिन्दू धर्म (जिसे सनातन धर्म कह दें, आर्यधर्म कह दें, भारतीय धर्म कह दें या और कुछ चीनी धर्म माओ और बौद्धधर्म ही प्रमुखतः गिनाए जाते हैं। इनमें सहस्राब्दियों से चला आ रहा धर्म है भारत का, जिसका मूलाधार वेद है (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्), वह वेद (ऋग्वेद) जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अब विश्व मानव के पुस्तकालय की प्रथम पुस्तक घोषित कर दिया है। इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। समावेशी प्रकृति, युगानुरूप परिवर्तनों को समाहित करने की प्रवृत्ति (न कि कट्टर जड़ता या अपरिवर्तनीयता जैसी अन्य धर्मों में देखी जाती है)। यहाँ यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमारी मूल अवधारणा यह है कि धर्म के मूल सिद्धान्त (जिन्हें धर्म लक्षण कहा गया है) स्थायी रहेंगे, सतत् होंगे, अपरिवर्तनीय होंगे किन्तु धर्म का आचरण, इसमें साधन और व्यवहार देश और काल के अनुरूप बदलते रहेंगे।

देश और काल

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन्हें धर्म के सिद्धान्त बताया गया है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, घी, विद्या, सत्य और अक्रोध इन्हें धर्म के आधार (धर्म लक्षण) कहा गया है (मनुस्मृति, ६/९२) धर्म में जो हमारे सतत् रहे हैं किन्तु धर्माचरण युगानुरूप बदलता रहा है। गीता में श्रीकृष्ण ने ''संभवामि युगे युगे'' कहकर संकेत रूप में इसका आभास भी दिया है। महाभारत कहता है ''नाऽत्यन्तिकोऽत्र धर्मोऽस्ति, धर्मोह्यावस्थिकः श्रुतः। (अर्थात् धर्म एवं एबसोल्यूट नहीं, रिलेटिव है)।'' एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा।

शौच या शुद्धि धर्म का आधारभूत सिद्धान्त है किन्तु शरीर शुद्धि, हस्त प्रक्षालन कैसे किया जाए इसका आचरण बदलता रहा है। हमारे पूर्वज शौच हेतु मिट्टी से हाथ धोते थे। मुलतानी से नहाते थे क्योंकि साबुन का उन दिनों आविष्कार ही नहीं हुआ था। अब साबुन से हाथ धोना या नहाना क्या वर्जित होगा? कुछ समय पूर्व पुराण पुरुष होटलों में भी मिट्टी ले जाकर चाहे हाथ धोते रहे है। किन्तु युगानुरूप यह आचरण बदला है और यह धर्मानुमत भी है। देश काल के अनुरूप परिवर्तन की यह अवधारणा ही हमारे धर्म को कट्टरता, आतंकवाद आदि से बचाती रहती है। यह परिवर्तन ही हमारे अस्तित्व का

रहस्य है। हमारे धर्म में ''देश कालौ संकीर्त्य'' कहकर प्रत्येक धर्म कार्य के पहले देश और काल का स्मरण शायद इसी लिए अनिवार्य किया गया था।

इस धर्म का सुदीर्घ इतिहास **''संस्कृति के चार अध्याय''** आदि अनेक ग्रन्थों में रामधारीसिंह दिनकर आदि अनेक विद्वानों ने विस्तार से अभिलिखित भी किया है जिसमें वेदकाल के प्राचीनतम युग की मान्यताओं से लेकर, पुराणकाल की कथाओं, मूर्तिपूजा की धाराओं, मध्यकाल में पड़ने वाले अन्य धर्मों के प्रभावों को भी स्पष्ट किया गया है। अनेक विद्वानों ने युगानुरूप परिवर्तनों के प्रमाण भी दिए गए हैं जिनमें सर्वाधिक स्पष्ट प्रमाण है ''कलिवर्ज्य धर्मों की अवधारणा'' अर्थात् कलियुग के आते ही कुछ धर्मों के बदलने की घोषणा (जैसे पशु मारकर किए जाने वाले यज्ञ, नियोग से सन्तान उत्पन्न करना आदि पाँच कार्य।)

शोध विद्वानों की तो यह खोज भी है कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं थी, एकेश्वरवाद भी नहीं था (''एक सद् विभा बहुधा वदन्ति'' यह एकेश्वरवाद का सूत्र नहीं, एकैकाधिदेववाद का है। Polytheism का नहीं, Henotheism का है। किसी एक प्राप्तव्य हेतु एक देव की आराधना की जाती थी। इसे एकैकाधिदेववाद कहा जाता था, बहुदेववाद नहीं। अतः (पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, वरुण आदि सभी वैदिक देवता प्रसिद्ध हैं।) उस समय यज्ञ प्रमुख धर्मकृत्य था (वेद उसी यज्ञ के विधायक हैं) पूजा नहीं, पूजा (या पुष्पकर्म) पुराण- काल में प्रचलित हुई। मूर्तिपूजा भी तभी से लोकप्रिय हो गई जो आज तक चल रही है।

उपनिषदों ने वेद के बाद में ब्रह्म की, परम तत्त्व की, अद्वैत की अवधारणा को जन्म दिया, ओंकार की महिमा बखानी। यह ओंकार आज हमारे धर्म का मुख्य आधार है, प्रमुख पहचान है जबकि कुछ विद्वानों का मत है कि संहिताओं में न तो ओंकार शब्द है, न प्रणव शब्द। वह उपनिषदों की देन है पर आज वह सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में जो मन्दिर बने हुए हैं। उनकी मूर्ति पूजा ने सदियों से हमारे भोले भाले ग्रामवासियों को, महिलाओं को, संबल दिया मूर्ति पूजा अपरिहार्य हो गई हैं। अतः कुछ विद्वानों ने तो यह प्रयत्न भी किया है कि वेदों में भी मूर्ति पूजा के कुछ संकेत ढूँढे जाएँ।

उद् विकास

आज राम, कृष्ण, हनुमान, भैरव, दुर्गा आदि करोड़ों भारतीयों के आराध्य है जो वेद में वर्णित नहीं हैं किन्तु जब से इनकी पूजा होने लगी ये हम सबके जीवनाधार बन गए। युगानुरूप यह परिवर्तन क्या हमारी संजीवनी नहीं बन गया? राम और कृष्ण को जो त्रेतायुग और द्वापर युग में हुए विष्णु का अवतार माना गया। उन्हीं के अवतार हैं मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह और वामन भी जिन्हे विद्वानों और मार्गदर्शकों ने प्रजातियों के उद्विकास का प्रतीक बताया है। जवाहर लाल नेहरू के ग्रन्थ ''डिस्कवरी

ऑफ इण्डिया'' में भी स्पष्ट किया गया है कि हजारों वर्ष पूर्व हमारी धार्मिक अवधारणा में अवतारवाद के रूप में प्रजातियों के उद् विकास का स्पष्ट विवरण है। पहले जलचर प्रकट हुए (मत्स्य), फिर उभय चर (कच्छप), फिर चौपाये (वराह) फिर दो पैर वाले इरेक्टस (नृसिंह), होमो सेपियन्स (वामन), फिर क्रमिक विकास हुआ। यह दशावतारवाद है। बाद में श्रीमद्भागवत ने चौबीस अवतार बतलाए जिनमें जिन और बुद्ध को भी शामिल कर लिया। यह युगानुरूप परिवर्तन का ही तो प्रमाण है।

इस अवतारवाद को भी आदर दिया गया। इनकी पूजा भी होने लगी और हो रही है। युग की गति ने जब करवट ली तो कुछ रूढियाँ भी पनपी। सोलह संस्कारों की अवधारणा तो अत्यन्त हितकारी थी किन्तु विवाह संस्कार में जब कन्यादान की रूढि पनपी तो बालिकाओं का विवाह भी होने लगा। बाल विवाह का यह दुष्प्रभाव तो होना ही था कि बच्चियों के पति की मृत्यु के फलस्वरूप बाल विधवाएँ होने लगी। समाज द्वारा बहिष्कार के फलस्वरूप उनकी दुर्दशा पशुओं से भी बदतर हो गई। वृन्दावन जैसे तीर्थों में भिखारिनों के रूप में रह रही विधवाओं का जीवन मृत्यु से बदत्तर होने लगा। दूसरी ओर पुरुष प्रधान समाज ने पति की मृत्यु के बाद, पत्नी के सती होने की प्रथा भी पनपाई।

इन प्रथाओं को समाप्त करने के लिए राजा राम मोहन राय और ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुष आगे आए। सती प्रथा समाप्त हुई। आज तो विधि द्वारा वह प्रतिबद्ध भी है। विधवा विवाह को भी अनुमति मिली। अनेक रूढ़ियों को समाप्त करने तथा वेदविहित धर्म की पुनः स्थापना के घण्टाघोष के साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना की जिसने मूर्तिपूजा का स्पष्ट विरोध किया, अवतारवाद का खंडन किया, एकेश्वरवाद की महिमा बतलाई (उस एकेश्वरवाद की जो ईसाईयत और इस्लाम जैसे विश्व प्रसिद्ध धर्मों का मूलाधार था) इसका भी आदर हुआ। यद्यपि सनातन धर्म के कुछ नेताओं ने आर्यसमाज का इस आधार पर विरोध किया कि मन्दिरों और मूर्तिपूजा जैसी सदियों से चली परम्पराओं को तोड़ना उचित नहीं है किन्तु आर्यसमाज के कारण बाल विवाह पर जो रोक लगी, बाल विधवाओं के पुनर्विवाह को जो मान्यता मिली, नारी शिक्षा को जो प्रोत्साहन मिला, वह समाज के लिए कितना हितकारी सिद्ध हुआ, यह स्पष्ट है। आर्य समाज तो महिलाओं के उपनयन (यज्ञोपवीत) का भी पक्षधर है, महिलाओं को वेद पढ़ाने का भी, जिसका विरोध सनातनियों ने किया था किन्तु युग ने स्पष्ट स्वीकार किया कि महिलाएँ भी वेद पढ़ सकती है। आज अनेक विदुषियाँ भारत का गौरव बढ़ा रही हैं। मूर्तिपूजा तो चलती रही और चलती रहेगी किन्तु उसके कारण पनप रही अवांछित रूढ़ियाँ युग की करवटों के साथ स्वतः समाप्त हो जाएँगी यह स्पष्ट है। आज हमारा धर्म वेदों को तो पूज्य मानता ही है, बाद में आई गीता को और भागवत् को भी उतना ही सम्मान देता है।

समावेशी दृष्टि

सनातन् धर्म की यही पहचान कि वह धर्म के सिद्धान्तों की अटलता का तो पक्षपाती है किन्तु

धर्म के आचरण में देश और काल के अनुरूप परिवर्तन को सदा मान्यता देता रहा है, उसकी सनातनता का रहस्य है। यह युगानुरूप परिवर्तन ही सनातन धर्म के सातत्य की संजीवनी है। तभी तो हमारे यहाँ मतभेदों को सदा मान्यता दी जाती रही है। कौन नहीं जानता कि हमारी दर्शन शाखाओं में चार्वाक, जैन, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त इन सभी को पूरी तन्मयता से पढ़ाया जाता है, सम्मान दिया जाता है, चार्वाक, जैन और बौद्ध तो नास्तिक दर्शन हैं जो ईश्वर को नहीं मानते किन्तु आस्तिक दर्शनों में भी सांख्य, वैशेषिक और मीमांसा 'ईश्वर' को नहीं मानते, केवल न्याय, योग और वेदान्त उसे मानते है किन्तु सभी का मत समझा-समझाया जाता है, सबको समान आदर दिया जाता है।

यह सामरस्य ओर सामंजस्य भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान है और धर्म की भी। यहाँ मत-मतान्तर अवश्य प्रकट होते हैं, किन्तु उनका समुचित समावेश शीघ्र ही कर लिया जाता है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इन्द्र वरुण आदि वैदिक देवता आज भी पूजे जाते है। राम, कृष्ण, शिव आदि भी। मध्यकाल में शैवों और वैष्णवों में तथा शाक्तों और वैष्णवों में भी मतभेद पनपे। उनका तुरन्त ही समाधान किया गया जिससे द्वेष, हिंसा आदि न फैले। ''दुर्गासप्तशती'' में शक्ति को विष्णुमाया बताया गया, समस्त देवों की संमिलित शक्ति का पुंज बताया गया तब से मतभेद समाप्त हो गए। यह दुर्गासप्तशती आज शक्तिपूजकों का कंठहार है। रामभक्तों और शिवभक्तों में तनाव पनपा तो सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस में शिव को परम रामभक्त चित्रित कर और राम को शिवभक्त चित्रित कर, राम के द्वारा रामेश्वरम् की स्थापना का वर्णन कर दोनों में समरसता स्थापित कर दी। रामचरितमानस आज भारत का सर्वोत्कृष्ट धर्मग्रन्थ बना हुआ है, उसे ही ''रामायण'' कहा जाता है। तब से शैवों और वैष्णवों में कभी संघर्ष नहीं हुआ। कोई आतंकवाद, कोई द्वेष इस धर्म में न होने का यह रहस्य मननीय है कि इसमें परिवर्तन को मान्यता दी गई है। सामरस्य, समावेश और सामंजस्य के प्रयास युग-युग में होते रहे हैं। यह एकता में अनेकता हमारी शक्ति है।

प्रधान संपादक, 'भारती' संस्कृत मासिक पत्रिका, सदस्य, संस्कृत आयोग (भारत सरकार)
पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी तथा आधुनिक संस्कृत पीठ, ज.रा. राजस्थानसंस्कृत विश्वविद्यालय, पूर्व निदेशक संस्कृत शिक्षा एवं भाषाविभाग, राजस्थान सरकार
सी/8 पृथ्वीराज रोड़, सी स्कीम, जयपुर।

वास्तवे हिन्दुः कः

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः

हिं=हिंसां सर्वथा यस्तु, दुनुयाद् = उपतापयेत्।
स एव वास्तवे हिन्दुर्, विश्व-ख्यात-स्वकर्मणा॥ १॥

जो व्यक्ति हिंसा करने को सर्वथा उपतप्त = नष्ट कर दे, वहीं व्यक्ति अपने इस विश्वविख्यात कर्म से वास्तव में हिन्दु होता है।

हिन्दुत्वं तदिदं हिन्दो, किमस्ति कदापि साम्प्रतम्?।
'कनक'-नामतः किं सयाद्, द्यत्तूरः स्व-मूल्यवत्॥ २॥

उस प्रकार का वह हिन्दुपना वर्तमान में कभी कहते है? कनक = स्वर्ण का नाम होने से ही क्या द्यतूरा उस स्वर्ण के मूल्य वाला बन जाता है?

हिंसां किं प्राणिनां सोऽद्य, मनो-वाक्-काय-कर्मभिः।
कुर्वन् न दृश्यते कुत्र?, सत्यं सत्यं निगद्यताम्॥ ३॥

क्या वह हिन्दु कहा जाने वाला व्यक्ति अपने मन, वचन, काय और कर्मों से प्राणियों की हिंसा करता हुआ कहाँ नहीं देखा जाता? सच सच बताओ।

संस्कृतस्य परित्यागो, हिन्दोः पतन-कारणम्।
केवलं संस्कृते लभ्या, विशुद्धा हिन्दु-संस्कृतिः॥ ४॥

संस्कृत का परित्याग कर देना ही हिन्दुओं के पतन का कारण है। केवल संस्कृत-वाङ्मय में ही विशुद्ध हिन्दु-संस्कृति प्राप्त होती है।

यद्-गृहे प्राप्यते नैव, गीता-रामायणादिकम्।
हिन्दुः किं सोऽपि वक्तव्यः?, रचयमेव विचार्यताम्॥ ५॥

जिस के घर में गीता, रामायण, पुराण आदि ग्रन्थ नहीं पाये जाते, क्या वह व्यक्ति भी हिन्दु कहा जाना चाहिये? स्वयं ही विचार किया जाये।

हिन्दुत्वस्य प्रसारार्थम्, अन्यत्र क्रियते श्रमः।
यथेष्ट-लाभदो नासौ, को न वेत्तीति बुद्धिमान्॥ ६॥

हिन्दुपने का प्रसार करने के लिये संस्कृत-वाङ्मय का अध्ययन अध्यापन और तदनुसार आचरण न करके दूसरे-दूसरे स्थान में परिश्रम किया जाता है, परन्तु वह परिश्रम मनोवान्छित लाभ देने वाला नहीं बनता-इस बात को कौन बुद्धिमान व्यक्ति नहीं जानता?

अत्यल्पोऽप्यभिमानश्चेद्, हिन्दुत्वं प्रति मानसे।
विहाय सकलं तर्हि, संस्कृतं प्राक् सुसेव्यताम्॥ ७॥

यदि मन में हिन्दु होने के प्रति थोड़ा सा भी गर्व है तो सब कुछ त्याग कर सबसे पहले पठन-पाठन और तदनुसार आचरण द्वारा संस्कृत-वाङ्मय को अच्छी तरह अपना लेना चाहिये।

तस्यैवाध्ययनाद् बोधात्, सम्यगाचरणात् तथा।
हिन्दुत्वं जन्यते नूनं, सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ८॥

उसी संस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन से, ज्ञान से और अच्छी तरह तदनुसार आचरण करने से व्यक्ति में हिन्दुपना उत्पन्न होता है- यह बात मैं सच सच कहता हूँ।

अद्य देशे यथाऽङ्ग्रेज्या, राज्यं सर्वत्र वर्त्तते।
तथैव संस्कृतं चापि, सर्वथैव प्रचार्यताम्॥ ९॥

आज देश में जिस प्रकार अग्रेंजी का सब जगह साम्राज्य है- उसी प्रकार संस्कृत का भी सभी प्रकार से प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिये।

तेनै वेष्टस्य लाभः स्यात्, तेनैव विश्व-मङ्गलम्।
तेनैवात्र परत्रापि, सुखं शान्तिश्च लभ्यते॥ १०॥

वैसा करने से ही अभीष्ट-लाभ होगा, वैसा करने से ही विश्व-कल्याण होगा और वैसा करने से ही इहलोक और परलोक में भी सुख और शान्ति मिलेगी।

शङ्काकाऽप्यत्र नोकार्या, शाश्वतं सत्यमुच्यते।
हिन्दुत्वं सार्थकं कर्त्तुं, संस्कृतं प्राक् सुसेव्यताम्॥ ११॥

इस विषय में कुछ भी शङ्का मत करना। यह मैं शाश्वत सत्य कहता हूँ। अपने हिन्दु होने को सार्थक बनाने के लिये सबसे पहले संस्कृत वाङ्यमय को अध्ययन अध्यापन द्वारा और तदनुसार आचरण करके भली भाँति अपना लेना चाहिये।

त्यक्त्वा स्व-हिन्दु-संस्कृति-मत्र जनास्तास्ता अन्यान्य-संस्कृतीः।
यदाऽवलम्बितवन्तस्-तदा हि ते स्वे सुख-शान्ती व्यनाशयन्॥ १२॥

जब यहाँ लोगों ने अपनी हिन्दु-संस्कृति को त्याग कर दूसरी दूसरी संस्कृतियों को अपना लिया, तभी से उन्होंने अपनी सुख-शान्ति को भी विनष्ट कर दिया।

हिन्दु-संस्कृतिरेवात्र, प्राचीन-भारतीय-संस्कृतिर्वर्त्तते।
यामवलम्ब्य कोऽप्यत्र, सुखशान्तितो जीवितुमवसरं लभते॥ १३॥

हिन्दु-संस्कृति ही यहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति है- जिसको अपनाकर कोई भी यहाँ सुख शान्ति से जीवित रहने के लिये अवसर प्राप्त कर लिया करता है।

यदा स्व-हिन्दु-संस्कृतिस्-, त्यक्ता तदैव देशं भ्रष्टाचाराः।
स्व-जाले निगडितवन्त, इति को नहि समनुभवति मनुष्योऽधुना?॥ १४॥

जब अपनी हिन्दु-संस्कृति का परित्याग कर दिया गया- तभी से देश को नाना प्रकार के भ्रष्टाचारों ने अपने जाल में जकड़ लिया, इस बात को अब कौन मनुष्य अच्छी तरह से अनुभूत नहीं करता है?

वैदिक-वाङ्मयं तथा, संस्कृत-वाङ्मयं तु दुराचारानिमान्।
रक्षत आत्मनि नैकान्, मार्गान् रोद्धुं यदि तत्रावधीयेत॥ १५॥

वैदिक-वाङ्मय तथा संस्कृत-वाङ्गमय ये दोनों इन भ्रष्टाचारों को रोकने के लिये अपने भीतर अनेक मार्ग रखते हैं, यदि उन पर ध्यान दिया जाये।

समस्त-हिन्दु-संस्कृतिर्-वैदिक-संस्कृत-वाङ्मयेऽद्यापि सुलभा।
किन्तु तदनुशीलयितुं, कस्य समीपे बहुमूल्य-समयोऽस्तीह?॥ १६॥

सम्पूर्ण हिन्दु-संस्कृति आज भी वैदिक-वाङ्मय और संस्कृत-वाङ्मय में सुलभ है। किन्तु उस वाङ्मय का अनुशीलन करने के लिये यहाँ किसके पास बहुमूल्य समय है?

संस्कृत-शिक्षाऽनिवार्य-, रूपेण दीयते नहि सर्वेभ्यः।
तेनैव राष्ट्र-चरितं, प्रतिक्षणं क्षीयमाणं दृश्यते॥ १७॥

संस्कृत-शिक्षा सभी को अनिवार्य रूप से नहीं दी जाती है, उसी कारण राष्ट्र का चरित्र प्रतिक्षण क्षीण होता हुआ देखा जा रहा है।

संस्कृत-विद्वांसो नहि, सन्ति सङ्कटितास्तेनैव प्रशासनम्।
संस्कृत-शिक्षामुपेक्ष्य, राष्ट्रचारित्र्य-ह्रास-रोद्यनेऽक्षमम्॥ १८॥

संस्कृत-विद्वान् भी सङ्कटित नहीं हैं। उसी कारण प्रशासन संस्कृत की उपेक्षा करके राष्ट्र के चरित्र के ह्रास को रोकने में असमर्थ बना हुआ है।

सत्यं त्वेतदेव यत्, स्वराष्ट्रं प्रति प्रेम दुर्लभमेवाभूत्।
तेनैवं राष्ट्रमेतद्, विविध-समस्याभिर्ग्रस्तं दृश्यतेऽद्य॥ १९॥

सच तो यही है कि लोगों का अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम दुर्लभ ही हो गया है। उसी कारण आज यह राष्ट्र विविध समस्याओं से ग्रस्त दीख रहा है।

सर्वे स्वार्थिना हन्त!, जाता नानुभवन्त्यनेनान्य-हानिम्।
मिथो हानिं प्रापयन्, न कश्चिदपि सुखं शान्तिं प्राप्नोप्यत्र॥ २०॥

दुःख है, सभी स्वार्थी हो गये हैं और इससे दूसरों की होनी वाली हानि का अनुभव नहीं करते हैं। आपस में एक दूसरे को हानि पहुँचाता हुआ। वहाँ कोई भी सुख शान्ति नहीं पा रहा है।

कथं स्वराष्ट्रेऽत्र प्रेम, भवताद् जने जने सुख-शान्तिकारकम्?
इत्येव शोचं शोच-मिह प्रकटितवानस्मि स्वां मनोव्यथाम्॥ २१॥

कैसे यहाँ अपने राष्ट्र में सुख-शान्ति करने वाला प्रेम जन जन में उत्पन्न हो? यही सोच सोच कर मैंने अपनी मनोव्यथा यहाँ प्रकटित की है।

सम्प्रति शास्त्रेषूक्तां, हिन्दु-संस्कृतिं परिपाल्यैव यदि जनाः।
मां शोक-निर्मुक्तमिह, कुर्युस्तर्हि बहु बहु तत्कृतज्ञः स्याम्॥ २२॥

अब यदि लोग शास्त्रों में बतायी गयी हिन्दु-संस्कृति का परिपालन करके ही मुझको यहाँ शोकमुक्त कर दें तो मैं उनका बहुत कृतज्ञ बनूँगा।

हिन्दु-संस्कृति-शून्या, संस्कृतानाघृत-वर्त्तमान-शिक्षा तु।
न चारित्र्य-शुद्धयै न च, दुराचार-रोधनायैवालमिहास्ति॥ २३॥

हिन्दु-संस्कृति से शून्य और संस्कृत पर अनाधारित वर्त्तमान शिक्षा तो न चरित्र को शुद्ध करने के लिये और न दुराचारों को ही रोकने के लिये यहाँ समर्थ है।

संस्कृतमङ्ग्रजीजीवत्-नापि कठिनं नाप्यवैज्ञानिकं चास्ति।
तत्तु सरलातिसरलं, मनःशोधकं भ्रष्टाचार-नाशकम्॥ २४॥

संस्कृत अग्रेंजी की तरह न कठिन है और न अवैज्ञानिक ही है। वह तो सरल से सरल, मन को शुद्ध करने वाली और भ्रष्टाचार को नष्ट करने वाली है।

संस्कृत-शिक्षार्थिनेतु, मम गृहमनावृत-द्वारमेव बोध्यम्।
संस्कृतमिह निःशुल्कं, शिक्षयित्वा हि तं स्वं धन्यं मंस्ये॥ २५॥

संस्कृत-शिक्षार्थी के लिये तो मेरे घर को सदा खुला दर्वाजा वाला ही समझना चाहिये। यहाँ उस शिक्षार्थी को निःशुल्क संस्कृत सिखा कर तो मैं अपने आपको धन्य ही मानूँगा।

ऊनत्रिंशे केसर-,विहारे विद्या-वैभव-भवनेऽत्र।
जगत्पुराख्य-जयपुरे, वासी कोविद-कुल-किङ्करः॥ २६॥
स्वहार्दं निवेद्यैवं, सर्वजन-मङ्गलाभिलाषुकोऽयम्।
विरमाम्यहमिहैव, प्रणमन् नारायणकाङ्करः॥ २७॥

यहाँ विद्या-वैभव-भवन, २९ केसर-विहार, जगतपुरा, जयपुर-३०२०१७ (राज.) नारायणकाङ्कर अपना हार्दिक भाव इस प्रकार निवेदित करके सभी को प्रणाम करता हुआ अब यही विराम ग्रहण करता हूँ।

राष्ट्रपति सम्मानित,
पीठाचार्य, संस्कृत प्रचार-प्रसार शोधपीठ,
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

श्रीविद्यायोगसाधना

प्रो. कमल चन्द्र योगी

ॐ ह्रीं स्वस्ति शिवौ वेदाः , श्रीविद्यायोगसाधना॥
धर्म-संस्कृति-संस्काराः भारतीय-गुणात्मकाः॥1॥

इति विषयमाधृत्य कमलचन्द्रयोगिना॥
विवेकानन्दनाथेन दीक्षान्यनाम धारिणा॥2॥

गुरूं नरहरिं नाथं ध्यात्वाचावेद्यनाथजम्॥
ज्ञानविज्ञानसम्पृक्तं शोध-पत्रं विलिख्यते॥3॥

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम्॥
दुःखत्रयाभिघाताय साङ्ख्यायुर्वेद योगतः॥4॥

क्रियेच्छाज्ञनसंसिद्धौ निरन्तरं सुखान्वयः॥
प्रणवे हि समाविष्टाः ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः॥5॥

ह्रीं देवी प्रणवे सन्ति काली-लक्ष्मीस्सरस्वती॥
स्वस्तौवस्ति गणेशश्च, पार्वती-परमेश्वरौ॥6॥

ऋग्यजुस्साम चाथर्व-वेदानां हि चतुष्टयी॥
सर्वसुखाप्ति सिद्धयर्थं श्री विद्यायोगसाधना॥7॥

सप्त-सोपान सम्पूर्णा कीर्तिर्वाक् श्रीर्धृतिः क्षमा॥
स्मृतिर्मेधाविभूतीनां प्राप्त्यै श्री-योग-साधना॥8॥

योगे युज्यते सौख्यं धर्मेण धार्यते प्रजा॥
संस्कृतिविर्श्ववारास्ति शुभ-संस्कार-संस्कृता॥9॥

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतिश्चैव संस्कृतम्।
'अवे-'ति रक्षणे धातोः ॐ रक्षकाक्षरं शुभम्॥10॥

ह्र-हरणार्थकादधातो ह्रीं दुःखसंहारकाक्षरम्॥
स्वस्ति गणेशचिह्नास्ति सुष्ठु-शुभं हि वर्तते॥11॥

शिवश्चैवशिवा चेति - पार्वती-परमेश्वरौ॥
चत्वारस्सन्ति वेदाश्च यजुस्सामर्गथर्वणः॥12॥

आयुर्धन्वर्थगन्धर्वाः उपवेदाश्च संस्मृताः॥
त्रिपुरसुन्दरीमाता श्रीविद्येति समीरिता ॥13॥

समाधौ युज धातोश्च योगः समाधि-बोधकः॥
यया हि साध्यते सिद्धिः सा साधना समुच्यते॥14॥

धारणे पोषणे चार्थे धृधातो धर्म-बोधता॥
सम्यग्धि भूषणी भूता विश्ववारा हि संस्कृतिः॥15॥

समपूर्वकात्कृधातोश्च भूषणौक्ये सुडागमे॥
क्तिन् प्रत्यये कृते जाते निष्पद्यते हि संस्कृतिः॥16॥

सम्पूर्वकात्कृधातो भूषणौक्ये सुडागमे॥
घञ्-प्रत्यये कृते जाते संस्कारः प्रतिपाद्यते॥17॥

रा.सं.संस्थानं (मानित विश्वविद्यालयः)
त्रिवेणीनगरम्, जयपुरम् ।

हिन्दू धर्म और स्वास्थ्य

डॉ शिवदत्त शर्मा

हिन्दू धर्म संसार की सबसे प्राचीन परंपरा है इसके चारों वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद भी संसार की सबसे प्रथम साहित्य रचनाओं मे से हैं जिसे स्वयं ईश्वर ने अपने मुख से कहा है और ब्रह्माजी ने इन्हें लिखा है इनमे लिखे जीवन जीने के नियमों का ताना बाना इस प्रकार तैयार किया गया है तथा मानव की दिनचर्या को इस प्रकार जोड़ दिया है कि स्वास्थ्य विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, जीव विज्ञान और रोग विज्ञान सभी से संबन्धित कर दिया है और ये भी निश्चित कर दिया कि यदि मानव इन नियम परम्पराओं के अनुसार चलता है तो उसका जीवन निरोग रह कर लम्बी आयु को प्राप्त होगा और यदि फिर भी कहीं चूक हो जाए और स्वास्थ्य गड़बड़ा जाए तो इसके उपचार के लिए भी यज्ञ विधा, मन्त्र विधा, नाद (स्वर) विधा, ध्यान-योग विधा जैसे उपाय भी धार्मिक परम्पराओं के साथ जोडे हैं।

हम प्रातः काल से ही प्रारम्भ करते हैं हिन्दुधर्म में ब्रह्ममूहुर्त में उठने का नियम है जिसका कारण हमारे शरीर में एक पिनियल ग्रन्थि होती है जो केवल प्रातः 4 बजे से 5.30 तक इतनी सक्रिय रहती है कि उस समय किए गये सभी कार्य मानव शरीर के लिए सफल से भी सफलतम सिद्ध होते है। विज्ञान कहता है कि प्रातः भ्रमण से अनेक रोगों से बचाव और छुटकारा मिलता है जैसे उच्चरक्तचाप (High Blood pressure), मधुमेह (B.sugar), मानसिक तनाव, जोड़ो में शक्तिसंचार आदि ये कार्य हिन्दुधर्म में नदी, कुएँ, तालाब आदि में स्नान करने जाने पर और मन्दिर दर्शन आदि से पूर्ण हो जाता है। स्नान करने का एक नियम होता है जैसे सर्व प्रथम पाँव के पंजो को भिगोना चाहिए फिर पिंडलियों को फिर घुटनों को इसके बाद कमर पेट छाती कंधो को और सबसे अंत मे सिर पर पानी डालना चाहिए ऐसा करने से हमारे शरीर का तापमान नहाने वाले पानी के बराबर आ जाएगा वहीं यदि हम सीधे ही मस्तक पर ठंडा पानी डालेंगें तो हमारी रक्तवाहिनियां सिकुड़ जाएगीं और दिल का दौरा तथा स्ट्राइक जैसी बीमारियां होने की आशंका बढ़ जाती है।

वैसे तो हिन्दू धर्म के जितने भी नियम हैं वे सभी मानव स्वास्थ्य और उसकी भलाई से किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं और उन पर एक पूरा ग्रन्थ लिखा जा सकता है लेकिन हम यहां आज केवल तुलसी चरणामृत के विषय में जानेगें।

हिन्दुओं के हर मन्दिर में चरणामृत दिया जाता है हमने सैंकड़ो बार लिया भी है लेकिन शायद कुछ ही लोगो को इस बात का पता हो कि इसे बनाने की प्रक्रिया क्या है और इसे लेने से शरीर में क्या प्रभाव होता है।

चरणामृत बनाने की प्रक्रिया:- सबसे पहले हम ये जान लें कि चरणामृत केवल शालिग्राम शिला के स्नान से प्राप्त जल से ही बनता है, जो नेपाल की गण्डकी नदी से प्राप्त होती है, हिमालय से बड़ी बड़ी विशालकाय शिलाएँ गण्डकी नदी के प्रवाह से टूट कर उसके साथ बहने लगती है जो हिमालय स्थित दुर्लभ औषधीय जड़ी बूंटीयों से टकराती वर्षो तक उनकी जड़ो में अटकी हुई पड़ी रहती है (यहाँ एक बात जानना जरूरी है कि शालिग्राम शिला में ऐसे गुण होते हैं कि वह जिस भी पेड़ पौधो के सम्पर्क में आती हैं उनके गुणों को अपने मे समाहित कर लेती है जबकि वही गुण तुलसी पत्रो को लौटाती है।) और वही शिलाएँ जब वर्षों की यात्रा लुढ़कते अटकते गण्डकी नदी के साथ करती हुई समतल मैदानी क्षेत्र में आतीं है तो वे पूर्ण रूप से शालिग्राम बन जाती है इन छोटी गोलाकार शिलाओं में भगवान विष्णु के स्वरूप चिन्ह जैसे चक्र, शंख, गदा, सूर्य-चन्द्र, मुकुट आदि पाए जाते हैं।

अब यही शालिग्राम जब मन्दिर में पूजे जाते हैं तो केसर चन्दन का तिलक लगा कर इनको तुलसी पत्र अर्पण किए जाते हैं जो बारह से लेकर चौबीस घण्टो तक इनके सम्पर्क में रहते हैं और शालिग्राम के वो गुण जो उसमे हिमालय की दुर्लभ औषधीय जड़ी बूटियों से प्राप्त हुए हैं अपने में समाहित कर लेती है और वही चरणामृत हमारे शरीर के लिए लाभ दायक होता है। इन्ही शालिग्राम को स्वर्ण पारखी लोग कसौटी के काम में भी लेते हैं और सोने को घिस कर असली नकली की परख करते हैं।

अब यह भी जान लीजिए कि चरणामृत का प्रभाव हमारे शरीर में क्यों और कैसे होता है। आयुर्वेद कहता है कि संसार में अमृत नाम की कोई वस्तु नहीं होती है लेकिन आयुर्वेद यह भी कहता है कि विष ही अमृत है यदि नियम और संयम से कार्य किया जाए तो विष को भी अमृत बनाकर संकट में आए प्राणों को बचाया जा सकता है या यूं कहें कि नया जीवन दिया जा सकता है।

अब आओ विष के सम्बंध के बारे में जानिए।

विष दो प्रकार के होते हैं।

1. जंगम।

2. स्थावर।

ये दोनों विष एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं।

जंगम विष हमें जीव जंतुओं जैसे सर्प, बिच्छु, मधुमक्खी, ततैया और जानवरों से प्राप्त होता है और स्थावर विष वनस्पति जैसे नीम, तुलसी, आक, धतूरा, वत्सनाभ, कमलनाल आदि में होता है ये दोनों विष एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं।

अब हम पुन: उसी विषय पर आते हैं। यहां दो प्रमाण है पहला मीरा बाई का जब राणा जी सारे जतन करके थक गए तो उन्होंने बदनामी के डर से और क्रोधवश होकर मीरा के प्राण हनन करने के लिए बड़े बड़े नागों का विष मंगाकर कूट क्रिया से मीरा को पिला दिया लेकिन मीराबाई बाल्यकाल

से ही तुलसी पत्र और शालिग्राम जी के चरणामृत का सेवन करती थीं अत: उनके शरीर में पहले ही स्थावर विष अमृत बनकर मौजूद था अत: जंगम विष का कोई प्रभाव उनके शरीर पर नहीं हुआ और पहले से भी अधिक स्वस्थ्य और आत्मविश्वास से ओतप्रोत नज़र आई।

अब दूसरा प्रमाण देखिए–

जब भीम को कौरवों ने वनस्पतियों से प्राप्त स्थावर विष खीर में मिला कर खिला दिया और मूर्छित होने पर उन्हें पत्थर से बांध कर गंगा में फेंक दिया तो भीम बहते डूबते नागलोक में पहुंच गए तो नाग लोक के रक्षक जहरीले नागों ने उनके शरीर को अनेक स्थानों पर डस लिया पर ये क्या भीम को तो ज्यों ज्यों नाग डस रहे थे उनमें प्राण व्याप्त हो रहे थे कारण वही स्थावर विष जो उन्हें खिलाया गया था उस पर नागों के डसने से जो जंगम विष उनके रक्त में गया उसने स्थावर विष के प्रभाव को समाप्त कर दिया।

तो यही है हिन्दू धर्म के नियमों में छिपी स्वास्थ्य रक्षक प्रक्रियाएं अब आप ही सोच लीजिए कि अमृत रूपी चरणामृत का हमारे जीवन में क्या महत्व है जब हलाहल विष भी प्रभाव हीन हो सकते हैं मामूली सर्दी जुकाम वेदना और कीटाणुओं का प्रभाव क्यों नहीं नष्ट हो सकता पर विडम्बना तो ये है कि हमने तो मन्दिर जाना ही छोड़ दिया है और पाश्चात्य संस्कृति की अंधी दौड़ में शामिल हो गए हैं।

बी.ए.एम.एस.
शशि नर्सिंग होम एन्ड क्लिनिक
सी -240 मुरलीपुरा स्कीम, जयपुर राज. 302039

देववाणी छन्दः मन्दाक्रान्ता

आचार्य महावीरप्रसाद शर्मा

भाषा भूषा निगमपदवीमाश्रिता ब्रह्मविद्या,
वेद्याऽच्छेद्या विविध पदगा संहता स्फोटरूपा।
सिन्धुर्विन्दौ करतलगतं विश्वभाभासयन्ती,
राष्ट्री धात्री विबुधमुखगा ब्रह्मसूर्देववाणी॥1।।

आद्याऽनन्ता निखिलवचसां धारयित्री धरित्री,
विद्याऽविद्या सकलवरदा तामसं हारयन्ती।
लक्ष्याऽलक्ष्या प्रकृतिपरमा कामिनी कामरूपा,
एका नैका जगति विवता देवता देववाणी॥2।।

सौम्यऽसौम्या प्रखरपदगा वैखरी वैजयन्ती,
नव्या प्राच्या चिरयुवतिका चेतना विश्वरूपा।
रम्या गम्या भव भय तमोहारिणी संगतार्था
भावोद्गात्री मधुरमधुरा चिन्मयी देववाणी॥
पापं वापं हृदयजड़तां नाशयन्ती निराशाम्,
छन्दोदीप्ता सुरसलहरी कर्ण पेया मनोज्ञा।
आर्या घार्या स्वर निचयगा मध्यमा मादयन्ती,
गेयाऽगेया मननसुफला राष्ट्रिया देववाणी॥3।।

मञ्जूषैषा सकलसुभगा रत्नगर्भा पदानां
सन्धिं प्राप्ता त्यजतिनितरां विग्रहं चेत्समस्ता।
दुष्टान् शब्दान् प्रजहति जनास्तद्धितं धारयन्ती,
शुद्धा, गौणी, बहुलमुदिता संस्कृता देववाणी॥4।।

विद्यावाचस्पति
करनाल (हरियाणा)

भारत के नौजवानों

कुमार संदीप

हे! भारत के नौजवानों

हे! भारत के नौजवानों
खुद का हुनर पहचानों
अपने कर्म से
करो धरा को उर्वरा
तुम तपो
सूर्य की तरह
एक दिन निखर जाओगे

हे! भारत के नौजवानों
एक लक्ष्य तुम बनाओ
लक्ष्य प्राप्ति हेतु
संकल्प लो
जब तक न मंजिल मिले
हार कर मत बैठो तुम

हे! भारत के नौजवानों
अपनी कमी तुम पहचानो
कमी दूर कर करो
खुद को निर्मल
सरल स्वभाव बनाओ,
मधुर स्वर में बोलो

हे! भारत के नौजवानों
तुम भी इतिहास रचो
देश के भविष्य हो तुम
वर्तमान की कीमत पहचानो

हे! भारत के नौजवानों
समय की कीमत पहचानो
एक बार जो
खो दिया समय को
खुद का अस्तित्व खो बैठोगे

हे! भारत के नौजवानों
नारी का सम्मान करो
नारी देवी है,
नारी जीवनदायिनी है
इस बात को मत भूलना तुम

हे! भारत के नौजवानों
सफलता मिलेगी निश्चित ही
आलस, लोभ, अहम् को त्यागो
कड़ी मेहनत करने की ठानों

हे! भारत के नौजवानों
ईर्ष्या कभी
किसी से न करना
ईर्ष्या बहुत बुरी है,
तुझ से तेरा चैन-ओ सुकून
छीन लेगी
इससे बचकर रहना तुम

हे! भारत के नौजवानों
माता-पिता और गुरु के
उपकारों को
कभी मत भूलना तुम
ईश्वर समान हैं माता-पिता
गुरु स्मरण रखना तुम

हे! भारत के नौजवानों
सुर्य की भांति
प्रकाशमान बनोगे तभी
जब सूर्य की तरह जलना सीखोगे
तकलीफ़ दर्द में तपो
एक दिन सूर्य की तरह
प्रकाशमान बनोगे

शहर-मुजफ्फरपुर ग्राम-सिमरा
राज्य-बिहार

Bhagavadgita: An extension of Vedic thought and philosophy

Dr. Renuka Rathore

Sanskrit literature knows of about one hundred Gitas[1]. Of these, the Bhagavad-Gita forming a part of the great epic, Mahabharata has no parallel. Most of them have been written in imitation of this great Gita of the epic. Therefore, 'the Gita' everywhere as here normally means the Bhagavad-Gita. This Gita has been presented as a dialogue between Lord Krishna and Arjuna. Apparently it is meant to persuade Arjuna to fight at a time when the two armies were standing face to face on the battlefield of Kuruksetra for waging the Great War. Lord Krishna was Arjuna's charioteer, a friend, philosopher and guide. When at the nick of the time, Arjuna flatly refused to fight and set aside his famous Gandiva, the Lord spoke to remove Arjuna's doubts and misgivings and prepare him to perform his duty as a Kshatriya, an Arya and an enlightened fighter for righteous cause.

What Krishna spoke in the entire Bhagavad-Gita is so rich in philosophical thought and spiritual teaching that it has assumed an importance of its own in the entire philosophical literature, not only of India but also of the entire world. As Swami Vivekananda says "when we sum up its esoteric significance, it means the war which is constantly going on within man between the tendencies of good and evil."[2] This is indeed the secret of the Gita. Everywhere, it is taken to be a guide to man in the hour of the depression and frustration, misguiding him to abstain from his duty on the battlefield of wordly life. In the words of Arnold, it is a `song celestial' meant to be a divine teaching for humans. Even a cursory look at the verses of the Gita makes one convinced of its close relationship with Vedic tradition which is so apparent, not only in its conceptual contents but also in the abundance of so many names, technical terms, symbols and linguistic usages that are peculiar to the Vedas and Vedic texts like Brahmnas, Aranyakas and Upanishads.

Linguistic Usage:

Most obvious of these factors is what is known as 'arsa- prayoga' or grammatical forms which are essentially Vedic. In this connection, as we move on, we come across a lot of evidence to prove that this famous dialogue between Lord Krishna and His disciple Arjuna is based on Vedic thought. For instance, the Bhagavad-Gita contains a number of archaic linguistic forms which are peculiar to those sacred texts. Here we list some of them in the following statement:

(1) The Vedic practice of using Atmanepada verbal forms in place of those of the Parasmaipada:

- न काङ्क्षे विजयं कृष्ण १/३२
- व्रजेत किम् – २/५४
- नमेरन् महात्मन् – ११/३७
- न तु मां शक्यसे द्रष्टुम् – ११/८
- विशते तदनन्तरम् – १८/५५

(२) The use of Parasmaipada verbal forms in place of the Atmanepada forms :

- इषुभिःप्रति योत्स्यामि – २/४
- यदि ह्यहं न वर्तेयम् – ३/२३
- नोद्विजेत् – ५/२०
- वश्यात्मा तु यतता – ६/३६
- कश्चिद्यतती – ७/३
- मामाश्रित्य यतन्ति ये – ७/२९
- युध्य च – ८/७
- यतन्तश्च दृढ़व्रताः – ७/३१
- रमन्ति च –१०/९
- प्रलये न व्यथन्ति – १४/२
- अवतिष्ठति – १४/२३
- निवर्तन्ति भूयः – १५/४
- यतन्तः, यतन्तः – १५/११
- नैव त्यागफलं लभेत् – १८/८

Besides linguistic uses of these two kinds, there are many others which may be briefly pointed out in the following manner:

- अशोच्यानन्वशोचः – २/११ (लङ् लुङ्)
- हे सखेति – ११/४९
- निवसिष्यसि – १२/८ (इट्)
- नमस्कृत्वा – ११/३५ (क्त्वा ल्यप्)
- सेनानीनाम् – १०/२४ (नुट् यण्)
- शाश्वते – ८/२६ (टाप् डीप्)

The Vedic Pantheon :

On the conceptual side of the Veda, the Gita mentions the names of Vedic gods like Varuna, Aryama, Brhaspati and Vaiswanara, besides Adityas, Vasus, Rudras and Maruts who form their own different groups in the Vedic pantheon. At several places, we also find the mention of the gods like Asvins, Dyavaprthivi and Aho-Ratrau, representing the twin gods which are peculiar to the Vedas.[3] All these gods are, however, to be understood as the multiple forms of the Supreme Divinity (Param Brahman), the eternal Purusa, who is unborn, omnipresent and ultimate and who is none else than Lord Krishna Himself.[4]

The most sacred symbol used for the Supreme Brahman in the Vedas is also found in the Bhagavadgita. It is 'Aum', also known as 'Pranava'. While enumerating His own vibhutis to Arjuna, the Lord Krishna Himself says that He is the Pranava of all the Vedas.[5] Then He goes on to instruct His disciple, briefly about its significance. Aum is the name of the imperishable Brahman and anybody who utters this mono-syllabic name, remembering God at the time of his death, attains salvation.[6] In the ninth chapter, Krishna, describing Himself as the father, the grand father, the mother and the sustainer of the world, indentifies Himself with the sacred Aumkara, along-with the RK, the Saman and the Yajus, as the knowables.[7]

Some Vedic Names :

There are also the words [8] like Vivaswan, Manu, Ikshvaku and Ushana which, though generally regarded as the names of some historical figures, cannot be properly understood unless we take them as the technical terms of the Vedic metaphysics. For instance, Manu, who is normally conceived as the name of the first man from whom all human beings have descended, is indeed derived from the root man , to think or ideate and connotes the spirit which is conceived as fourfold with regards to the physical, the vital , the mental and the supra-mental stages of human personality. It is for this reason that Gita also speaks of four Manus,[9] besides a single one.

In the Vedas, while normally the word Manu is used in singular and plural, we also find two words, Manuvat and Manushvat, obviously referring to the two aspects of the spirit, which may be respectively called manava and manushya in the Vedas. In the puranas, each of these two aspects of human spirit is further divided into seven stages, thereby giving rise to the concept of fourteen Manus and Manvantaras. The same fourteen are often compared with the same number of Kulkaras in the Jain tradition and with the fourteen gems obtained from the churning of ocean by gods and demons in the well-known myth of Samudra-manthana.

The Vedic Style :

Here, it will be worthwhile to talk of the characteristic Vedic style which the Gita employes to expound the divine gospel. The most conspicuous in this respect is the use of first person, particularly when Krishna describes what are called His Vibhutis or the multiple

forms of His becoming . This is the peculiar device which has been frequently used by the Vedic poets. In RV. 4.26.1, for instance, the deity is thus speaking: " I became Manu, the Surya; I am Kaksivana, the seer and the genious. I bring out Kutsa, the son of Arjuna and I am the poet, named Usana." Again in RV. 4.27.1 the same deity, changing his tone a little, says like this : "While I was in womb, I knew the births of all the gods. Hundred fortresses surrounded me, but as Syena (Lit. Falcon) I flew away with great speed."

Similarly there are many other hymns where one or the other Vedic God, speaking in first person, describes his or her manifestations and exploits of different kinds. Most noteworthy of these hymns are the four in the Rgveda (10. 47-50) where Indra-Baikuntha gives vent to his own self. In RV. 10.125 also, the goddess Vak in her soliloquy describes in detail how she functions , not only through many groups of gods like Rudras, Vasus and Adityas but also through the dual divinities like Mitra-Varuna, Indra-Agni and Asvinou.

Deva and Asura:

The Bhagavadgita sometimes also uses certain terms of Vedic mythology, bereft of their symbolic cover found in the Vedas. For example, in the sixth verse of the sixteenth chapter, it speaks of the twofold creations as Deva and Asura. In the Veda, the two are often represented as the two descendants of Prajapati, and they are at war with one-another.[10] The Gita, however, does not refer to their war as such, but uses these two terms to signify the two opposite qualities of human nature, namely the Daivi-Sampad (Divine wealth) and Asuri-Sampad (Demonic wealth). This, in fact, points out the conflicting nature of the Devas and Asuras when, in Vedic symbolism they are associated with day and night respectively.[11]

Of the two kinds of opposite qualities, the Daivi-Sampad consists of fearlessness, the purity of sattva, the pursuit of Jnana-Yoga, generosity, self-restraint, sacrifice, self-study, austerity, honesty, non-violence, truth, non-anger, renunciation, quietude, integrity, compassion, the absence of lust, gentleness, modesty, non-fickleness, forgiveness, fortitude, cleanliness, the absence of ego-sense. Opposite to these qualities are those that constitute the Asuri-Sampad or demonic wealth which includes the evils like pretentiousness, arrogance, egoism, anger, cruelty, ignorance and violence.

Gita makes an attempt to revive the original symbolic meaning of the two words Deva and Asura. According to the tradition preserved in the Brahmnas, the Devas were born of Prajapati's 'su' (good) side, whereas Asuras were the product of his 'asu' (not good) side. Therefore, by including all the good qualities in the divine wealth (Daivi-Sampad) and all evils in demonic wealth (Asuri-Sampad), the Bhagavad-Gita has restored the original sense given to the two symbols by Vedic Rishis.

Yajna:

A similar effort is clearly visible in the various references to the Vedic concept of yajna.

Laying stress upon the works for sake of yajna (3.9), the Gita speaks of the yajna with which all the progenies (Prajah) were created by prajapati, with a clear instruction that yajna is meant for higher product (prasava) and desirable desire (istakama).[12] This is indeed what is known as Prajapatya-yajna, described in the Rigveda (10.130) as pervading everywhere, spread by the hundred and one acts of gods. The Gita, therefore, regards yajna as a joint concern of men and gods (3.11). Pleased by yajna, gods give man the desirable enjoyments which must, therefore, be enjoyed with a sense of charity and catholicity without which one becomes a thief (3.12). To eat what remains after yajna leads man to the freedom from all sins, whereas to cook food with a selfish motive is a sin.[13]

Pointing out the all-pervasive nature of yajna, it is said to be born of annam, the annam comes from cloud-rain, the cloud from the yajna and the yajna again comes from the karma which emerges from Brahman, the growing off-shoot of the immutable Brahman.[14] Thus, the circle of the cosmic-yajna has to be followed by man and to neglect it is to accept the sinful life of the self-centered sensual pleasures.[15] To be free from the fruits of works, one must do them for the sake of yajna, without having attachment for their fruits and with one's mind set on the wisdom that the act of offering the oblation is itself Brahman, and so is not only the oblation itself, but also the fire in which it is offered and likewise the end to which it is directed by what is called the Brahmakarmasamadhi- the growing Brahmakarma resulting in samadhi.[16]

The true yajna, according to the Gita, is performed by yogis, It is of two kinds- the one is the 'Daiva-yajna' amounting to worship the plurality of gods, and the second is the yajna that results by taking that Daiva-yajna as the offering of oblations into the fire of Brahman.[17] Besides this twofold yajna of the yogis, the Gita mentions several other yajnas[18] and decries the man, without yajna (ayajna)[19] as unfit for this world. All these yajnas are the product of work (Karmajan)[20], but yajna of wisdom (jnana-yajna) is superior to Dravya-yajna involving physical oblations,[21] because the entire karma ultimately ends in wisdom (spiritual knowledge.)

Seen from this point of view, the concept of yajna is not limited to the offering of oblations into the physical fire alone. Originally it is the divine and spiritual sacrifice of yogis, whereas the popular form of sacrifice performed on the altar is only permissible as a symblic form of the former. There is also, says the Gita, a sacrifice in which our senses are offered as an oblation into the fire of self-control, whereas there is a different sacrifice where our sense perceptions are offered into the fires of our senses.[22]

So, as the Vedic terms that found its full-fledged appearance in the total didactic portions of the great epic is most pronounced and profound in this Gita. Even a cursory look at the verses of the Gita makes one convinced of its close relationship with Vedic tradition which is so apparent, not only in its conceptual contents but also in the abundance of so many

names, technical terms, symbols and linguistic usages that are peculiar to the Vedas and Vedic texts like Brahmnas, Aranyakas and Upanishads.

The Cause of Confusion :

In spite of all this, scholars have sometimes tried to seek in the Bhagavadgita a revolt against the Vedas. This is largely due to the misunderstanding about the peculiar nature of the Vedic technical terms which the Gita has used in the traditional sense that is now totally lost. For example, take the word Veda itself. For us today, the Veda is the name of four sacred books, but we often hear of three Vedas or trayi, mentioned in several texts. To explain away this anamoly, some modern scholars imagined that originally there were only three Vedas, and the forth one, belonging to non-Aryans, was later accepted by Aryans. In ancient India also, it was said that all the four Vedas were called trayi, for they have only three kinds of compositions, namely

(1) The RKs, meant to be recited.
(2) The Samans, meant to be sung.
(3) The Yajus, the prose portions.

Actually both of these conjectures are only meant to hide the ignorance of the traditional concept of Veda and the trayi. On the evidence of Vedic texts themselves, it is said that, from this stand point, Veda is the name of the creative power or the consciousness of Brahman which splits itself into trayi-vidya, named the RK, the Saman and the Yajus signifying respectively the cognitive, affective and connative power. This trinity of creative power in its essential unified form was present in the original Veda which was called Brahma-Veda,[22] because it belonged to Brahman, and also Atharva-Veda[23] literally meaning the Veda ' going downward ' by its manifestation into the trinity.

The creative consciousness in man working at mental, vital and physical level, appears in the multiplicity of cognitive, affective and connative creation, whereas the undifferentiated form of this trinity may be seen in the unitary consciousness of the supramental level, appearing in mental peace, sound sleep, unified vision and the like. Now, when seers composed poems with reference to the working of this fourfold creative power, called Veda, they naturally classified them as belonging to one supramental Veda and the three of its lower dimensions, thereby also calling them respectively the Atharva-Veda, the Rigveda, the Samaveda and the Yajurveda after the names of the creative consciousness in its aforesaid four dimensions. This is the reason why a deliberate attempt seems to have been made in presenting the four samhitas as the symbols respectively of the four dimensions of the aforesaid creative power. Thus, the Rigveda is jnanakanda representing the cognitive aspect of creative power, whereas the Yajurveda symbolizes its connative aspect and the Samaveda its affective aspect, harmonizing both cognition and connation. The Atharvaveda, known as the Vijnana-

kanda, refers to the quintessence of all the three as found in its outward expression, whereas the jnana-kanda symbolizes only its inward aspect which is essentially cognitive (jnana), pure and simple. Thus, the Rigveda may be, in a sense, called a book on the jnana-yoga, that is, the integration of jnana (wisdom).

REFERENCES :

1). For details, see 'The Gitas in the Mahabharata and the Puranas' by Dr. R. Nilakanthan (Naga Publisher, Delhi)

2) "The complete works of Swami Vivekananda" page 101.

3) In the Gita : Varuna (10/29), Aryama (10/29), Brhaspati (10/24), Vaiswanara (15/14), Adityas (11/6), vasus (11/6), Rudras (11/6), Maruts (11/6), Asvins(11/6), Dyavaprthiv (11/20), Aho-Ratrau (8/17).

4) परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।। Gita : 10/12

5) प्रणवः सर्ववेदेषु. ७/८

6) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यःप्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। ८/१३

7) पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यतुरेव च।। ९/७

8) इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।। ४२१

9) चत्वारः मनवः १०/६

10) Gita : 4/1-4

11) देवाश्च वाअसुराश्च प्रजापतेर्द्वयाःपुत्रा आसन्। तां १८.१.२
अहर्वै देवा आश्रयन्त रात्रीमसुराः। ऐ.४.५, गो २.५.१
अहर्वै देवानामासीद्रात्र्यसुराणाम्। काठ ७.६; क ५.५.१

12) सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसवियध्वमो वोऽस्त्विटकामधुक्॥-३/१०

13) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विौः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ ३/१३

14) 3/14-15

15) 3/16

16) 4/23-24

17) 4/25

18) 4/26-32

19) 4/31

20) 4/32

21) 4/33

22) ब्रह्मवेद एव सर्वम् गो. १.५.१५; मूलं वै ब्रह्मणो वेदः काठसंक ४.५

23) तद्यदब्रवीदथार्व्वाडे नमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत् तदथर्वणोर्थ्वत्वम्। गो.१

रक्षा सूत्र

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

चिन्ता की लकीरें ललाट पर फैलती जा रही थी और मैं चिन्तामग्न होते हुये सोच रहा था। मेरा यह मानना गलत सिद्ध हुआ कि यह मधुमेह रोग चालीस वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों को तथा धनाढ्य वर्ग के व्यक्तियों को ही होता है। जबकि सभी प्रकार के रसों का सेवन करना आवश्यक होता है किन्तु मैं अधिक मीठा रस ही सेवन करता रहा। मैथी, करेला, ग्वारपाठा का सेवन करना मुझे कभी नहीं जचता था। मिठाइयों के अलावा मुझे समोसा, कचौरी, बड़ापाव, बर्गर, पिज्जा आदि ज्यादा पसन्द आते थे जो प्रायः सभी मैदा से बने हुये होते है। मुझे अब यह ज्ञात हुआ है कि यद्यपि मैदा गेहूँ से बनती है किन्तु इसकी निर्माण प्रक्रिया में जो अनेक रासायनिक पदार्थ (अलोक्सान एवं अन्य ब्लीचिंग पदार्थ) उपयोग में लाये जाते हैं जो शरीर की अग्न्याशय नामक पोषण ग्रन्थि के इन्सुलिन स्राव कोशिकाओं को नष्ट कर मधुमेह उत्पन्न करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। मैं परिश्रम से भी जी चुराता रहा जबकि घर वाले मुझे प्रातः घूमने जाने के लिये कहते थे किन्तु मैं देर तक सोता रहा और घर पर भी व्यायाम आदि पसीना लाने वाले श्रम से सदा दूर रहा। अधिक पौष्टिक भोजन का सेवन करना और परिश्रम न करना इन कारणों से ही मैं मधुमेह से ग्रसित हो गया हूँ।

कुछ दिनों से मुझे कमजोरी विशेष महसूस होने लगी। बिना परिश्रम ही थकावत होने लगी। भूख भी कुछ ज्यादा ही लगने लगी। बार-बार पेशाब जाना और प्यास अधिक लगना लक्षण प्रकट हुये। पैरों में दर्द हरदम रहने लगा। जब मैंने पत्नी को मेरी इन शिकायतों से अवगत कराया तो वह तुरन्त डॉक्टर के पास लेकर गई और डॉक्टर ने जाँच कर बतला दिया कि आपको मधुमेह है। डॉक्टर ने कुछ दवा लिखकर दी और उन्हें बराबर लेने का परामर्श दिया किन्तु इन दवाईयों को सेवन करने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। मुझे यह जानकारी मिली थी कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मधुमेह का अब तक कोई निश्चित इलाज नहीं है। इस चिकित्साविज्ञान का इलाज आहार नियंत्रण तथा दवाओं का निरन्तर सेवन करते रहने तक ही सीमित रह गया है। दवाओं से रोग पर नियंत्रण नहीं होने पर इन्सुलिन का प्रयोग किया जाता है। इससे मधुमेह की जड़ को नहीं उखाड़ा जा सकता है जबकि इन दवाओं के दुष्परिणाम भी सामने आने लगते हैं।

अभी कुछ दिनों पूर्व रक्षाबन्धन के दिन मेरी बहिन श्यामा घर आई। एक खुशी की लहर सारे घर में फैल गई। वैसे जब भी बहिन हमारे यहाँ आती है। खुशियाँ लेकर ही आती हैं किन्तु इस बार

काफी अन्तराल के बाद और अपने पुत्र सुभाष को भी साथ लेकर जो आई थी। अतः अधिक खुशी होना स्वाभाविक था।

शुभ्रवस्त्रों में सजकर बहिन ने मेरे माथे पर मंगल-टीका लगाया और राखी बाँधी। दोनों प्रेम पारावार में आकण्ठ डूब गये। प्रातः काल की सूर्य किरणें खिड़की से आकर भवन में अधिक प्रकाश फैलाने लगी और उन किरणों से हाथ पर बंधा रक्षासूत्र दमकने लगा। अब बहिन ने मेरा मुख मीठा करने के लिये मेरे मुख की ओर अपना हाथ बढ़ाया था कि मैंने उसका हाथ थाम लिया। बहिन सकपका गई और एक अपराधी की सी मुद्रा बनाते हुये बोली – 'क्यों क्या बात है?'

मेरे गले में थूक अटक गया, मुझसे कुछ भी बोला नहीं गया। अपने आप से ग्लानि होने लगी कि मैं कितना बदनसीब हूँ, जो अपनी बहिन के दिये हुये प्यार के फल और मिठाई भी नहीं खा सकता। मेरे कुछ कहने से पूर्व ही पास में बैठी पत्नी ने कह दिया– 'डॉक्टर ने मीठा खाने को मना किया है।' बहिन ने पुनः प्रश्न किया

'क्यों?'

'इन्हें डायबिटीज है।'

'मुझे तो तुमने बताया ही नहीं'– विस्मय से बहिन बोली।

'यों ही नहीं बताया कि आपको चिन्ता होगी।' पत्नी ने प्रत्युत्तर दिया।

इतने में ही मैंने थोड़ा मिठाई का टुकड़ा और दो अंगूर सहसा उठाकर मुँह में डाल दिये। सभी के मुख पर एक हल्की सी मुस्कान बिखर गई। बहिन की कामना पूरी हुई और उसने जानना चाहा– 'अभी क्या इलाज चल रहा है?'

मेरी कहानी पत्नी की भाषा में वर्णित होने लगी– इन्हें पहले ही अपेक्षा भूख अधिक लगने लगी, वजन घटने लगा, बार-बार मूत्र-त्याग करना, अधिक प्यास लगना और आलस्य आना ये लक्षण दिखाई दिये। कभी-कभी पैरों में जलन भी होने लगी। ये सब शिकायते होने पर डॉक्टर के पास लेकर गये तो उन्होंने जाँच करने के पश्चात् 'मधुमेह' रोग निश्चित कर दिया। खाली पेट जाँच कराने पर रक्त में शर्करा (ग्लूकोज) 150 मिग्रा. और भोजन के दो घण्टों पश्चात् 180 से कुछ अधिक ही आयी। डॉक्टर ने हमें बताया कि– हमारे द्वारा लिया जाने वाला अधिकतम भोजन ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है और यह ग्लूकोज शरीर को शक्तिप्रदान करता है। शरीर के उदर में स्थिर अग्न्याशय (पैक्रियाज) नामक ग्रन्थि एक प्रकार का हार्मोन तैयार करती है, जिसे इन्सुलिन कहते हैं यह ग्लुकोज को शरीर के कोषाणुओं में प्रवेश करने में मदद करता है। जब मधुमेह हो जाता है तो शरीर या तो इन्सुलिन तैयार करने में असमर्थ हो जाता है (टाइप-1) या फिर स्वयं के द्वारा तैयार किया गया इन्स्युलिन पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाता (टाइप-2)। इस कारण शरीर में मौजूद ग्लूकोज हमारे रक्त प्रवाह में ही घूमता रहता है। ऐसी

स्थिति में रक्त प्रवाह में ग्लूकोज की पर्याप्त मात्रा होने पर भी इन्सुलिन के अभाव में शरीर के कोषाणुओं को ग्लूकोज नहीं मिल पाता है वे भूखे ही रहते हैं।

डॉक्टर ने हमें बताया था कि इन्हें टाइप-2 डाइबिटीज है। उन्होंने पूरी तरह समझाया था कि – इस रोग से ग्रस्त प्रत्येक दस में से एक व्यक्ति को टाइप-1 डाइबिटीज होता है। इस तरह का डाइबिटीज अधिकतर बालकों और युवाओं में पाया जाता है। इसमें शरीर इन्सुलिन तैयार ही नहीं कर पाता हैं। जिससे रोगी को प्रतिदिन इन्सुलिन इंजेक्शन लेना पड़ता है। शेष दस में से 9 व्यक्तियों को टाइप-2डाइबिटीज होता है। यह सामान्यतया 45 वर्ष से अधिक उम्र वाले उन व्यक्तियों को होता है, जिनके परिवार में किसी को यह रोग हुआ हो या जिनका वजन अधिक हो, जो व्यायाम नहीं करते हो और जिनका कोलेस्ट्रोल अधिक हो। इस टाइप-2 के रोगियों का शरीर पर्याप्त मात्रा में इन्सुलिन तैयार नहीं कर पाता हैं, या इसका पूरी तरह से उपयोग नहीं कर पाता। इसके लिये इस रोग की दवा निरन्तर लेना आवश्यक होता है और साथ में संतुलित भोजन का सेवन और व्यायाम भी करना जरूरी होता है। लाभ न होने पर ऐसे रोगियों को भी कई बार इन्सुलिन लेना आवश्यक हो जाता है।

इतना कुछ कहने के बाद पत्नी ज्यों ही चुप हुई, मैंने अपनी बारी समझकर बोलना प्रारम्भ किया– ''कुछ दिन उन डॉक्टर महाशय की दवायें ली किन्तु उन दवाओं से शरीर में जलन एवं खुजली सी होने लगी। अतः उन दवाओं को बन्द करना पड़ा।''

मेरा यह कथन सुनकर भागीनेय सुभाष ने ऐलोपैथी चिकित्सा पर चुटकी लेते हुये कहा कि–

एक न एक आरजा रहा हमको।
थमे दस्त तो बुखार आया॥

और हमारे मुखों पर हंसी बिखर गई। पत्नी पुनः उसी प्रसंग पर आ गई– ''फिर हमने वह दवा बन्द कर दी। तब से कोई विशेष दवा चालू नहीं हैं। अब हमें इनका इलाज कहाँ करवाना चाहिये– यही हमें सोचना है।''

'मामाजी, आप अपना प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से इलाज शुरू करवाइये, इन दवाओं के झमेले में मत पड़िये'–सुभाष ने अपनी राय प्रकट की।

सुनते ही तपाक से बहिन बोल पड़ी– क्यों न हम इन सब चिकित्सा पद्धतियों के मूल पर आ जाय। आयुर्वेद इन सभी पद्धतियों का मूल है और एक निरापद चिकित्सा पद्धति है। मैंने इस पद्धति के विषय में कुछ जानने का प्रयत्न किया है और कई सुयोग्य आयुर्वेदीय चिकित्सकों के व्याख्यानों को भी सुना है। मैं उन चिकित्सकों को भली भाँति जानती हूँ। अतः कल हमें एक ऐसे ही कुशल पीयूष पाणि चिकित्सक के पास चलना होगा।

दूसरे दिन सुबह हम चारों प्राणी वयोवृद्ध ज्ञान वृद्ध पीयूषपाणि प्राणाचार्य के पास पहुंच गये। उन्होंने सारी उचित परीक्षा करने के बाद यह औषध व्यवस्था की।

1. प्रातः पहले दिन त्रिफलाक्वाथ में भिगोये हुये (कुल 24 घण्टों तक भिगोये गये) चने 50-60 ग्राम खाकर गिलोय स्वरस का पान करे (उपलब्ध होने पर आँवले का या कच्ची हल्दी का रस भी लिया जा सकता है)

2. रौप्यभस्म – 125 मि.ग्रा.
   अभ्रक भस्म (शतपुरी) – 125 मि.ग्रा.
   त्रिवंगभस्म – 250 मि.ग्रा.
   स्वर्णमक्षिकभसम शुद्ध मधु के साथ अथवा सालम पाक 10 ग्राम के साथ।
   दिन में दो बार

3. शिवा गुटिका 2-2 गोली दिन में दो बार गाय या बकरी के फीके दूध के साथ।

4. विल्वपत्र, निम्बपत्र, कड़वी नाय, सोंठ, कुटकी, तेज पान, कलौंजी 10-10 ग्राम गुडमार 20 ग्राम और मैथी दाना 30 ग्राम लेकर चूर्ण बना ले। 5-5 ग्राम पूर्ण भोजन से आधा घण्टे पहले सेवन करें।

साथ में पथ्यापथ्य की भी तालिका लिखकर उन्होंने दी- जौ, चनै, गैहूँ (बेजड़) की रोटी, जौ का सत्तू, जौ-गैहूँ का दलिया, मूँग, मौठ, चना, अरहर की दालें, करेला, परवल, खीरा, तुरई, मूली की सब्जियाँ, तैल सरसों का या तिल तैल, फलों में जामुन, आँवला, सेव आदि सेवन करने चाहिये।

अपथ्य–मिष्ठान्न, चावल, मैदा, उड़द, कन्दशाक (आलू, शक्करकन्द, जमीकन्द आदि।)
शीतल पेय, आईसक्रीम, मांस-मदिरा, धूम्रपान आदि का परहेज आवश्यक है।
व्यायाम, योगासन और संतुलित आहार पर पूरा ध्यान रखा जाय।

बहिन के परामर्श सहयोग और असीम प्यार की सराहना मैं किन शब्दों से करुँ, जिसने मेरे हाथ पर रक्षा-सूत्र बांधने के साथ ही जीवन सुरक्षा हेतु रक्षा सूत्र भी बाँधा। भाव विभोर हो कर मैं सहसा गा उठा–

यह युगों युगों से ही निभ रहा प्रेम का नाता।
उल्लास हृदय में भरती शुभ्र संस्कृति की गाथा॥
इस प्रेम परस्पर से जीवन जीना भाता।
इससे ही धरती पर वह स्वर्ण सजा जाता॥
पूजन न परम्परा का इस बन्धन का वन्दन।
यह बहिन भाइयों का प्यारा रक्षा बन्धन॥

अध्यक्ष, राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद,
21, रामेश्वर धाम, मुरलीपुरा स्कीम, जयपुर

निपातानां द्योतकत्वं वाचकत्वं वा

प्रो. श्रीधर मिश्रः

अस्यां संगोष्ठ्यामहं निपातानां द्योतकत्वं वाचकत्वं वेति विषये स्वकीयान् विचारान् प्रस्तौमि। तत्र सर्वप्रथमं विचार्यते यत् निपातत्वं नाम किम् ? अत्रोच्यते प्रागीश्वरा निपाताः इति। अकीरीश्वरे इत्यतः प्राक् निपाता अधि क्रियन्ते इति तदर्थः। अतः प्रादीनां चा दीनां चोभयेषां निपातत्वं सङ्गच्छते। अव्ययसंज्ञके सूत्रे – ''स्वरादिनिपातमव्ययम्'' इत्यत्र स्वरादीनाम् स्वर्, प्रातर्, सनुतर्, प्रभृतीनाम्, च वा ह प्रभृतीनां निपातानञ्चाव्ययसंज्ञा विधीयते। स्वरादि निपाताद्योः प्रार्थक्ये प्रयोजनं तु ''आद्युदात्ताः निपाताः'' इत्यनेन निपातानां उदात्त्वं तदितरेषां स्वरादीनां तद्भिन्नत्वकल्पनमेव।

अत्र नैयायिकाः प्र परा अप् सम् प्रभृतीनां प्रादीनां द्योतकत्वं, च वा ह प्रभृतीनां चादीनां वाचकत्वं संगिरन्ते। तत्र द्योतकत्वं नाम – स्वसमभिव्याहृतपदनिष्ठशक्त्युद् बोधकत्वं प्रायेण। तेन अनुभवतीत्यादौ 'अनु' इत्येत समभिव्याहृतं समीपोच्चरितं पदं भू प्रभृति तन्निष्ठाया शक्ति अनुभवार्थबोधिका तस्या उद्बोधकत्वं अनाविति लक्षणसमन्वयः। क्वचिच्चक्रिया विशेषाक्षेपकत्वं द्योतकत्वम्। तथाहि विलिखति इत्यत्र विमाय लिखतीत्यर्थावगमर्थान् मानाकि यापेक्षत्वं वावित्यत्र। एवं शक्तिग्राहककोशादिबलार्थबोधजनकत्वांच्चादीनां वाचकत्वं सिद्धयति। साक्षात् प्रत्यक्षतुल्ययोरित्यमरः। किञ्च अन्वयव्यतिरेकाभ्यामपि चादीनां वाचकत्वमङ्गीक्रियेत। तथा हि 'इव' सत्वे सदृशार्थबोधः तदसत्वे तदर्थाप्रवृत्तिः इति नैयायिकाः। तदुक्तम् –

निपातां वाचकत्वमन्वयव्यतिरेकयोः।
युक्तं वा न तु तद्युक्तं परेषां मतमेव नः॥ इति॥

वैयाकरणास्तु एतन्नसहन्ते। यतो हि येन हेतुना नैयायिकै प्रादिषु द्योतकत्वं साध्यते तेनैव हेतुना चादिष्वपि द्योतकत्वं सिध्यति। एवमेव येन हेतुनाया दीनां वाचकत्वं साध्यते तेनैव हेतुना प्रादीनामपि वाचकत्वं सिध्यति। प्रादीनां द्योतकत्वं प्रादीनां च वाचकत्वेवेति न नियमः। अपितु उभयोरुभयम्। तदुक्तं वैयाकरणभूषणसारे –

द्योतकाः प्रादयो येन निपाताश्चादयस्तथा।
उपास्येते हरिहरौ लकारो दृश्यते यथा ॥ इति॥

अत्रेदं विचार्यते। अनुभवतीत्यादौ अनुभवः किम् उपसर्गार्थः विशिष्टस्य अथवा धात्वर्थः। नाद्यः यतोहि अनुभवो यहि उपसर्गार्थः तदा भवते अनुभवार्धात्वर्थफलव्यधिकरणत्वाभावादकर्मकत्वान् 'सुखम्' इत्यत्र कर्मत्वानुपपत्तिः किञ्च उपस्थिते हरिहरौ इत्यत्र कर्मणि लकारो न स्यात्। न विशिष्टार्थः गौरवात्। अतो अन्ततो धात्वर्य एव। तेभ उपसर्गस्य द्योतकत्वे अनुभवार्थकस्य भवतेः सकर्मकत्वे 'सुखम्' इत्यत्र न द्वितीयानुपपत्तिः

उपास्येते हरिहरौ इत्यत्र कर्मणि न लकारानुपपत्तिः। इत्थं यथा प्रादीनां द्योतकत्वं तथा 'चन्द्रमिव पश्यामि' इत्यादौ चन्द्र पदस्य तत्सदृशे लक्षणया चन्द्रस्यसादृश्यविशिष्टे चन्द्रे स्वीकारार्थ इव पदस्य तात्पर्य ग्राहकत्वमात्रात्तस्य द्योतकत्वं सिध्यति। अतः यस्मात् कारणात् प्रादीनां द्योतकत्वं तस्मात् कारणात् चादीनामपि द्योतकत्वं सामान्य तया सिद्धम्। तदुक्तं भूषणसारे –

तथाऽन्यत्र निपातेऽपि लकारः कर्मवाचकः।
विशेषणाद्ययोगोऽपि प्रदिवच्चादिके समः॥ इति॥

अतएव साक्षात् क्रियते अलङ्क्रियते उरीक्रियते इत्यादावपि धातोः साक्षात्काररुपधात्वर्थ फलव्यधिकरणव्यापार वाचकत्वात् सकर्मकत्वात् कर्मणि लकारः सिद्धः। साक्षात् प्रभृतीनि पदानित्वत्र, तापर्यग्राहकरुपाणि। अतः एषां चादीनां द्योतकत्वमेव सिद्धयति। अतएव अथ शब्दानुशासनम् इत्यत्र 'अथ' शब्द प्रारब्ध क्रिया द्योतको न तु वाचकः निपातत्वादुपसर्गवत् इत्युक्तं कैय्यटेन। निपातत्वं चाखण्डोपाधिरुपं जातिरुपं शब्दस्वरुपं वेति पक्षत्रयेऽपि प्रादिचादि साधारणमेव। यदि उपसर्गाणां चादीनामिव वाचकत्वं स्वीक्रियते तदा 'उपास्यते गुरुः' इत्यादौ आस् धातोः धात्वर्थफलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वाभावात्तस्य कर्मणि न लकारः सिध्येत अतस्तेषु प्रदिषु वाचकत्वं नाङ्गीकर्तुं शक्यते। अपि चादीनामपि वाचकत्वाङ्गीकारे काव्यादौ तेषां नान्वयः। अन्वये च तदुत्तरं विभक्तीनां श्रवणापत्तिः स्यात्।

तदुक्तम् –

शरैरुद्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव।
इत्यादावन्यो न स्यात् सुपां च श्रवणं ततः॥ इति॥

उस्रसदृशैः शरैः रसातदृशान् उदीच्यान् उद्धरिष्यन् इत्यर्थः। अत्र 'इव' शब्दस्य सादृश्यद्योतकत्वे प्रकृत्यर्थाभावेन प्रातिपदिकत्वं न करणत्वं च न तृतीयाविभक्त्युत्पत्तिः। उस्रशब्दस्य विशेषणत्वे शरशब्दस्य विशेष्यत्वे चोभयो समानविभक्तिक योरभेदान्वय बोधः। 'इव' शब्दस्य वाचकत्वे तु समानविभक्तकत्वाभावेऽपि अभेदान्वयबोधाय निपातेतरसंकोचस्यावश्यकत्वम् इति गौरवम्। तदुक्तम् –

निपातातिरिक्तसमानाधिकरणप्रातिपदयोरेभेदान्वयव्युत्तिरितिनियमः। तेन स्तोकं पचति मृदु पचति इत्यादौ असमानविभक्तिरयोरपि पदयोरभेदान्वयबोधे न क्षतिः। तदुक्तं वैयाकरणभूषणसारे –

सदृशः सदृशान्वेति विभागेन कदाचन।
निपातेतरसंकोचे प्रमाणं किं विभावय॥ इति॥

अस्माकं मते निपातानां प्रातिपदिकाभावेन नान्वयः। चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेत्यत्र निपातशब्दस्य नाम्नः पार्थक्येनोपदिष्टत्वात्। अस्माकं मते उपसर्गनिपातयोःरुभयोरपि द्योतकत्वस्वीकारे न हानिः। तदुक्तम् आकृत्याधिकरणे–

चतुर्विधे पदे चात्र द्विविधस्यार्थनिर्णयः।
क्रियते संशयोत्पत्तेर्नोपसर्गनिपातयोः॥
तयोरर्थाभिधाने हि व्यापारो नैव विद्यते।
तदर्थद्योतकौ तौ तु वाचकः स विचार्यते॥ इति॥

अनेन सिध्यति यदर्थसंशये सति नामाख्यातयोरेव अर्थकथनव्यापार ऋषिभिः कृतो नोपसर्गनिपातयोः। यतोहि सामान्यरुपेण उपसर्गनिपातौ द्योतकावेव। अनयोर्वाचकत्वे विशेषरूपेण विचारः कर्त्तव्यः। इदानीं चतुर्विधानां पदजातानां विषये विचार्यताम्। प्रातिशाख्येऽपि नामाख्यातमुपसर्गो निपातः, चत्वार्याहुः पदजातानि शब्दाः। तत्र -

तन्नाम येनाभिदधाति सत्वं, तदाख्यातं येनभावं सधातुः।
उपसर्गा विंशतिरर्थवाचकाः सहेतराभ्यामितरे निपाताः॥
क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्वाभिधायकं नाम निपाताः पादपूरणाः॥ इति॥

इत्थं च वैयाकरणानुसारम् उभयत्राप्युभयम्। निपातानामपि द्योकतत्वं सिध्यति। उपसर्गाणां द्योतकत्वं तु सर्वेषां मतेन्।

आचार्यः व्याकरणविभागः
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्
जयपुर परिसरः

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

डॉ. शालिनी सक्सेना

ईश्वर के अवतारों के सन्दर्भ में भगवान् नारायण के दशावतार माने गए हैं। दशावतार को वैज्ञानिक सृष्टि के विकासक्रम के रूप में देखते हैं। श्री विष्णु का प्रथमावतार 'मत्स्य' के रूप में हुआ। विज्ञान में भी सृष्टि का प्रारम्भ जलीय जीवों से ही माना गया है। द्वितीय अवतार 'कूर्मावतार' है जो जल व थल दोनों का वासी है। तृतीयावतार 'वराह' है जो दलदली भूमि में विचरण करता है। नृसिंह अवतार पशु व मनुष्य के मध्य की अवस्था है। वामन मानव के विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। परशुराम पूर्ण मनुष्य हैं लेकिन प्रवृत्ति हिंसक है। रामवतार मानव के वनवासी युग का प्रतीक है। अष्टमावतार श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु के पूर्णावतार हैं। 'बुद्ध' नवम व 'कल्कि' दशम अवतार हैं। ये तो विज्ञान का पक्ष हुआ भारतीय परम्परा में श्री कृष्ण को छोड़कर ये सब श्री विष्णु के अंशावतार थे केवल श्री कृष्ण श्री विष्णु के पूर्णावतार कहे गए हैं।

श्री कृष्ण भगवान् के पूर्णावतार हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धि के चार रूपों में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य की पूर्णता श्रीकृष्ण के चरित्र में पूर्णतः दिखाई देती है। श्रीकृष्ण के अवतार का उद्देश्य अधर्म का विनाश एवं सज्जनों की रक्षा है। महाभारत में कहा गया है:

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

धर्म की स्थापना के लिए श्रीकृष्ण का पूरा जीवन समर्पित है। धर्म की स्थापना के लिए ही वे पाण्डवों के पक्ष में खड़े थे। उनका प्रत्येक कार्य धर्म की रक्षा के निमित्त है। उनका चरित्र शुद्ध, सात्त्विक हैं, रज और तम का वहाँ स्पर्श भी नहीं है। धर्म की रक्षा के लिए वो गोकुल छोड़कर मथुरा चले आए और लौटकर गोकुल नहीं गए। न तो यशोदा का मोह और न राधा का राग कोई उन्हें नहीं बाँध सका। धर्म की रक्षा के लिए वे अपना मान और दम्भ सब छोड़ देते हैं। धर्म के प्रधान अंग सत्य का भी उन्होंने पालन किया। श्री कृष्ण ने दो धर्मों में परस्पर विरोध दिखाई देने पर उसके मध्य की भ्रान्ति को अपने आचरण और उपदेश के माध्यम से सुलझा दिया। धर्म का स्वरूप देश काल पात्र सापेक्ष होता है। ''श्रेयान् स्वधर्मः'' के वे पूर्णज्ञाता थे। दुष्टों का किसी भी प्रकार दमन वे धर्मानुमोदित मानते थे। अधार्मिक के साथ धर्मपालन उन्हें स्वीकार्य नहीं था। परीक्षित को जीवनदान देते समय उनका कथन 'मैंने आजन्म कभी धर्म या सत्य का अतिक्रमण नहीं किया हो, तो यह बालक जी उठे' उनकी धर्मपरायणता और धर्म की

अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन ही है। बुद्धि का दूसरा रूप ज्ञान भी श्रीकृष्ण में अपने चरम रूप में विद्यमान था। व्यवहार, राजनीति, धर्म, दर्शन सब उनमें पूर्णता धारण करते हैं। वे सर्वज्ञान निधि थे।

बौद्धिक विकास का नाम ऐश्वर्य है। उसके प्रतिफल स्वरूप 'अणिमा' आदि सिद्धियां और अलौकिक बाह्य सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। द्वारिका की समृद्धि इसे सिद्ध करती है। भगवान् श्रीकृष्ण में जन्मना ऐश्वर्य विद्यमान है। आध्यात्मिक शक्तियों की विभूतियों के रूप में ही उनके अलौकिक कार्य हुए हैं। बुद्धि का चतुर्थ रूप वैराग्य भी उनमें चरम पर था। वैराग्य राग द्वेष का विरोधी है। इसकी पूर्णता यही है कि सब कार्य सम्पन्न करता हुआ भी, पूर्ण रूप से संसार में रहता हुआ भी अनासक्त रहे, किसी बन्धन में न बंधकर निर्लिप्त रहे। एक ओर जो कृष्ण गोप-गोपियों, नन्द-यशोदा व राधा के बिना एक क्षण नहीं रह सकते थे वे अक्रूर के साथ मथुरा जाने के बाद कभी लौटकर नहीं आए। रास मध्य में अन्तर्हित होकर समय-समय पर अपनी निरपेक्षता का प्रदर्शन उन्होंने किया था। जो प्रेम करने वाले के साथ प्रेम न करें वह आत्मसमा, आप्तकामा, अकृतज्ञ, गुरुद्रुह में से एक होता है या तो वह पूर्ण ज्ञानी होगा या कृतघ्न। उन्होंने अनेक दुष्ट राजाओं का वध किया और फिर उनकी सन्तानों को ही राज्य का अधिकार देकर राज्यलोलुपता से स्वयं को मुक्त रखा। वैराग्य का ही अन्य लक्षण समता है। श्रीकृष्ण के आचरण में यह भाव स्पष्ट है। हर एक यही मानता है कि श्रीकृष्ण मेरे हैं किन्तु वे किसी के नहीं होकर भी सबके हैं फिर भी सबसे स्वतन्त्र हैं। बुद्धि के उक्त सात्विक रूप जिसमें होते हैं वहीं भगवान् कहलाता है:

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णं भग इतीरणा॥
वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्धयः।
बुद्धयः श्रीर्यशश्चैते षड् वै भागवतो भगाः॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।

भगवद्गीता में बुद्धि के सात्विक रूपों का विशद विवेचन हुआ है। योग के माध्यम से जीव में सात्विक बुद्धि के लक्षण प्रकट होते हैं फिर भी जीव में ये सप्रयास होते हैं और भगवान् में स्वतः सिद्ध। भगवान् श्रीकृष्ण में अव्ययपुरुष की पाँचों कलाओं का पूर्ण विकास है। इसीलिए गीता में उन्होंने स्वयं को स्थान-स्थान पर अव्ययपुरुष कहा है।

महाभारत में श्रीकृष्ण एक पूर्ण अवतार के रूप में चित्रित हुए हैं। उन्होंने माँ यशोदा को भी अपने पूर्ण एवं बृहद्स्वरूप का दर्शन करवा दिया था। वे शौर्य एवं वीर्य के प्रतिरूप हैं। राजनैतिक नेतृत्व के अद्वितीय उदाहरण हैं। वे नीति एवं न्याय के अनुगामी हैं। आसक्ति रहित, समता परायण, विरक्त कर्मयोगी, कुशल प्रशासक हैं। वे ज्ञान, विज्ञान और बौद्धिक क्षमता की पराकाष्ठा हैं।

अव्यय पुरुष की पाँच कलाएं हैं:- आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् । भौतिक समृद्धि एवं वाकशक्ति वाक् नामक कला है। श्री कृष्ण में यह पूर्णता से विद्यमान है। वाक् कला का अद्भुद् निदर्शन श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश है जो किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति को सन्मार्ग पर लाने के साथ मानव जीवन को अपने परम लक्ष्य की ओर उन्मुख करने में समर्थ है। बल, शौर्य, क्रियाशीलता प्राण नामक कला है। अपने बल एवं शौर्य का प्रदर्शन उन्होंने जन्म से ही प्रदर्शित करना शुरु कर दिया था। सद्यजात शिशुरूप कृष्ण ने पूतना के प्राण हर कर उसे उल्टा लटका दिया था। कुमारावस्था में पुराने अर्जुन-वृक्षों को एक झटके में उखाड़ फेंका तो किशोरावस्था में कंस के बड़े-बड़े योद्धाओं को धूल चटा दी। अपने जीवनकाल में भूमण्डल पर विद्यमान दुष्टों का संहार किया। उनके व्यक्तित्व में विद्यमान मनस्विता, उत्साह, मनमोहकता आदि मन नामक कला का परिणाम हैं। जरासन्ध, शिशुपाल एवं कंस जैसे धुरन्धर योद्धाओं से भयभीत हुए बिना उनका संहार करना मनस्वी श्रीकृष्ण की ही क्षमता थी। उनका मनोहारी रूप किसी को भी अपने वश में करने में समर्थ था। उनका सर्वज्ञत्व स्वरूप विज्ञान नामक कला का ही परिणाम है। विज्ञान से तात्पर्य संसार-ग्रन्थिमोचक आत्मविज्ञान है। भगवद्गीता का उपदेश इसी का परिणाम है। उनका स्वरूप आनन्दमय अलौकिक है यह आनन्द नामक कला के कारण है। वही ब्रह्म का मुख्य स्वरूप है। आनन्द के द्विविध भेद समृद्ध्यानन्द एवं शान्त्यानन्द दोनों की उपस्थिति श्रीकृष्ण में है। इष्ट प्राप्ति से होने वाला आनन्द समृद्ध्यानन्द तो दु:खनिवृत्ति पर होने वाला आनन्द शान्त्यानन्द है। समृद्ध्यानन्द के मोद, प्रमोद प्रिय आदि भेद उपनिषदों में प्रतिपादित किए गए है। इसी प्रकार शान्त्यानन्द के ब्रह्मानन्द, योगानन्द, विद्यानन्द आदि भेद प्राप्त होते हैं। इन सबकी उपस्थिति श्रीकृष्ण के अवतार में विद्यमान है। उनके दर्शनमात्र से प्राणी आनन्दविभोर होकर सुधबुध खो बैठता है। गोप- गोपियोंके साथ की लीलाएं, महारास आदि उनके आनन्दमय स्वरूप का आख्यान हैं। इस प्रकार अव्यय पुरुष की पंचकलाओं से युक्त श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु के पूर्णावतार हैं। उनमें विष्णु की सौलह कलाएं यथावत् निहित हैं:- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, अतिशयिनी, विपरिनाभिनी, संक्रमिणी, प्रभवी, कुंठिनी, विकासिनी, मर्यादिनी, स्नेहालादिनी, आह्लादिनी, परिपूर्णा, स्वरूपावस्थिति।

भगवान् राम को श्री विष्णु का अंशावतार कहा गया है क्योंकि उनमें अन्तिम दो कलाएं नहीं थी क्योंकि रावण को दिए वरदान के अनुसार उन्हें मानवरूप में रावण का वध करना था। परिपूर्ण का तात्पर्य हर प्रकार के ज्ञान से सम्पन्नता है तो स्वरूपावस्थिति अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होना है। भगवान् राम के अवतार में विष्णु ने अपनी अन्तिम दो कलाओं को छिपाया और एक सामान्य मनुष्य के समान आचरण किया। भगवान् के प्रकाश का भौतिक शरीर के रूप में प्रतिभासित होना ही कला है। श्री राम में चौदह तो श्रीकृष्ण में भगवान् विष्णु का सम्पूर्ण आलोक आलोकित होता है। श्रीकृष्ण में जीव एवं ब्रह्म का अद्वितीय एकाकार अद्वय रूप हैं। यही उनके अवतार का सौन्दर्य है।

सामान्य मनुष्य में परमतत्त्व की पाँच कलाएं विद्यमान रहती हैं। साधना के माध्यम से वह आठ कलाओं तक की स्थिति में पहुँच सकता है। समस्त कलाओं को प्राप्त करने पर ही श्रीकृष्णरूप दिव्यात्मा कहलाते हैं। स्वयं परब्रह्म बन जाते हैं, अतः कलाएं जीव अथवा आत्मा के आध्यात्मिक उन्नयन की द्योतक हैं। श्रीकृष्ण हर दृष्टि से पूर्णावतार थेः- वे एक दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, राजनयिक, योद्धा, योगी, प्रेमी, त्यागी हर रूप में पूर्ण थे। किसी के लिए भी इन सब गुणों को एक साथ धारण करना सम्भव नहीं है लेकिन कृष्ण अवतार में वे इन सब कलाओं को साथ लेकर अवतरित हुए। रामवतार में उनका उद्देश्य पृथक् था वे नैतिक एवं धर्म सम्मत शासन की स्थापना का उद्देश्य लेकर अवतरित हुए थे।

कृष्णावतार का उद्देश्य बहुआयामी था। श्रीकृष्ण एक चपल बालक से लेकर एक निष्णात राजनयिक कूटनीतिज्ञ के साथ वेदान्त एवं योग की उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त कर योगीश्वर की उपाधि प्राप्त करना उनके अवतार के उद्देश्यों में था। इसीलिए उन्हें पूर्णावतार कहा गया। श्रीकृष्ण असीम, निस्सीम निराकार हैं उनकी क्षमताएं अपरम्पार हैं। वे अपने जीवरूप, तुरीय रूप एवं परमात्मस्वरूप को जानते थे। इसीलिए कहा गया हैः- **कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**

प्रोफेसर, भाषा विज्ञान,
राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
जयपुर

प्रयाग एवं कुम्भ

(रामचरित मानस के परिपेक्ष्य में)

पं. रमाशङ्कर गौड़

विश्व की सबसे प्राचीनतम एवं जीवन्त संस्कृति भारतीय संस्कृति ही है। यहाँ धर्म, श्रद्धा, विश्वास एक दूसरे में समाहित हैं। इस पुण्य सलिला भारत भू पर धार्मिक आस्थाओं के इतने आयोजन मेले हैं कि उनकी गणना करना संभव नहीं है।

इसी भारत भूमि पर पृथ्वी का सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन तीर्थराज प्रयाग के संगम तट पर मकर संक्राति १४ जनवरी २०१९ से कुम्भ के रूप में आरम्भ हुआ। ४९ दिन (१४ जनवरी मकर संक्राति से ४ मार्च महाशिवरात्रि) तक चलने वाले इस कुम्भ-महापर्व पर १५ करोड़ श्रद्धालुओं के आने का अनुमान था। उपस्थिति अनुमानिक संख्या से कहीं अधिक रही। ३२०० हैक्टर क्षेत्र में १८ सैक्टरों में विस्तारित इस मेले पर ४५०० करोड़ रूपये खर्च किये गये थे। १० लाख टैन्ट लगाये गये उत्तर-प्रदेश सरकार का एजेन्डा स्वच्छ कुम्भ और स्वस्थ गंगा था। व्यवस्था के लिये २ लाख कर्मचारियों की सेवा ली गई। साधुओं के अखाड़े - जूना, निरंजनी, उदासीन (बडा एवं नया), महानिर्वाणी, निर्वाणी, निर्मोही, निर्मल पंचायती, पंचायती, आव्हान, अग्नि, आनन्द, दिगम्बर आदि ने अपनी-अपनी उपस्थिति प्रदर्शित की। सर्वत्यागी संत, महामण्डेलश्वर, मण्डलेश्वर, महंत, मठाधीश, गादीपति, सन्यासी सहित प्रत्येक हिन्दू इस कुम्भ में संगम के पवित्र जल में स्नान करने की अपनी कल्पना संजोये चला आया। माना जाता है कि महाकुम्भ प्रारम्भ २५२० वर्ष पूर्व हुआ था। कालान्तर में इसके प्रवर्तक आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य थे।

कुम्भ का आशय कलश (घड़े, मटकी) से है जिसमें समस्त देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित विराजित है। चिर पुरातन काल से नीति-अनीति का संघर्ष होता रहा है। नीति के प्रतिपालक देव कहे गये है तो अनीति असुरों की पोषित की गई है। देवासुर संग्राम की प्राचीन परम्परा को वेद से लेकर पुराणों तक में वर्णित किया गया है। सर्वजन हिताय, सदैव जीवित रहने की अभिलाषा हेतु अमृत की खोज, मानव जीवन के निरन्तर अनुसंधान का अन्वेषक विषय रहा है, वर्तमान तक। इसी अमृत के लिये समुद्र का मंथन किया गया था -

देव दानव संवादे, मध्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोसि तदा कुभं, विधृतो विष्णुना स्वयं॥

यह वर्णन समुद्र मंथन को वर्णित करता है। समुद्र मंथन के लिये पर्वतराज मंदिराचल की मथनी बनाई गयी और महानागराज वासुकि को रज्जु (रस्सी)। डूबती मथनी को आधार देने के लिए विष्णु भगवान को

स्वयं कच्छप (कछुवे) के रूप में अवतरित होना पडा। वासुकि को मुख की ओर से दानवों ने थामा और पूँछ से खींचकर मथने की जिम्मेदारी देवताओं को मिली। वासुकि की फुंकार से दैत्यों का रंग काला हो गया। १४ रत्नों में सर्वप्रथम अमृत का सहोदर गरल विष निकला। पृथ्वी पर हलाहल से हलचल मच गई, देवों के देव महादेव से प्रार्थना की गई, शिव ने उस गरल को अपने कण्ठ में धारण किया। विष धारण करने से विषपायी एवं कण्ठ नीला हो जाने से नीलकण्ठ कहलाये। फिर चन्द्रमा का प्रादुर्भाव हुआ, विष सहोदर को विष शमन हेतु शान्तेश्वर शङ्कर को प्रदान किया गया, इसलिये वे चन्द्रमौलि हुए। फिर निकले लक्ष्मी, शार्ङ्ग धनुष, कौस्तुभ मणि, कौमुदी गदा, शंख इन रत्नों को रमापति चतुर्भुज विष्णु ने ग्रहण किया। बाद में निकले रम्भा, उच्चैश्रवा, कामधेनु, ऐरावत, पारिजात जो इन्द्र के सानिध्य में प्रतिस्थापित हुए। अन्ततः अमृत कुम्भ सहित आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का प्राकट्य हुआ। जिनकी जयन्ती दीपावली पूर्व त्रयोदशी को मनाई जाती है। असुरों को अमृत से वंचित करने के लिए बाद में विष्णु को मोहिनी रुप में अवतार लेना पड़ा।

देवगुरु बृहस्पति के निर्देश पर इन्द्र पुत्र जयन्त अमृत कुम्भ लेकर भाग पड़ा, दैत्य उसके पीछे। पृथ्वी के अनुक्रम में १२ वर्षों तक युद्ध होता रहा इस काल में जहाँ-जहाँ कलश प्रतिस्थापित किया एवं उसमें से अमृत कण छलके वे स्थान सिंहस्थ महापर्व के हेतु बने, उसे कुम्भ-महाकुम्भ कहा जाने लगा। बृहस्पति, सूर्य एवं चन्द्र के योगदान के कारण इनके संयोजन पर कुम्भ होते हैं। हरिद्वार के गङ्गा तट पर कुम्भराशि के बृहस्पति में, मेष राशि के सूर्य होने पर, प्रयागराज में गङ्गा-जमुना-सरस्वती (गुप्त) के सङ्गम तट पर माघी अमावस्या को मकर राशि में सूर्य, चन्द्र तथा वृषभ राशि में बृहस्पति होने पर, नासिक में गोदावरी तट पर, सिंह राशि के बृहस्पति में सिंह राशि का सूर्य होने पर कुम्भ का आयोजन होता है। इस प्रकार चार वर्षों में कुम्भ और उस विशिष्ठ स्थान पर १२ वर्षों के उपरान्त कुम्भ का होना निश्चित होता है।

मकरे च दिवानाथे, वृष राशि गतौ गुरौ।
प्रयागे कुम्भ योगो च, माघ मासे विधुक्षये॥

महाकवि संत तुलसीदास जी महाराज ने अपने रामचरित मानस में इसका वर्णन किया है। यही नही उन्होंने प्रयागराज की महिमा अनेक स्थानों पर प्रकट की है - राम कथा श्रवणकर्ता श्री भरद्वाज मुनि का आश्रम प्रयाग तट पर ही कहा गया है। यहीं उन्होंने याज्ञवल्क्य जी से राम कथा सुनी थी। बालकाण्ड़ में तुलसी लिखते है -

चौपाई - माघ मकरगत रबि जब होहि। तीरथपतिहि आवे सब कोई॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी॥
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहि गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥

तहाँ होई मुनि रिषय समाजा। जाहि जे मज्जन तीरथ राजा॥
मज्जहि प्रात समेत उछाहा। कहहि परस्पर हरि गुन गाहा॥
दोहा - ब्रह्म निरुपन धरम बिधि बरनहि तत्व विभाग।
कहहि भगति भगवतं कै संजुत ग्यान बिराग॥४४॥
चौपाई - एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज-निज आश्रम जाहि॥
प्रति संबत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहि मुनिबृंदा॥

अयोध्या काण्ड में इस तीर्थ स्थान की महिमा का गुणगान कवि तुलसी ने श्रीराम के मुख से इस प्रकार वर्णित किया है -

चौपाई - प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भंडारु। पुन्य प्रदेश देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढु गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहीं प्रति पच्छिन्ह् पावा॥
सेन सकल तीरथ बरबीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा॥
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
चँवंर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहि दुख दारिद भंगा॥
दोहा - सेवहि सुकृति साधु सुचि, पावहि सब मन काम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥१०५- अयोध्या॥
चौपाई - को कहि सकई प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुख पावा॥
कहि सीय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बडाई॥
करि प्रनामु देखत बनबागा। कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि बिधि आई बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुंमगल देनी॥
मुदित नहाई कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥

इन्हीं प्रयागराज की महिमा तथा चत्वार फल(धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने वाले प्रयाग स्नान के पुण्य को रुपक रुप में गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में वर्णित किया है -

चौपाई - मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्मा विचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम रबिनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

बटु बिसवास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देत सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥
दोहा - सुनि समुझहि जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहि चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥२२॥

विष्णु पुराण में कुम्भ स्नान का महत्व अश्वमेध, वाजपेयी यज्ञ और पृथ्वी प्रदक्षिणा से कई गुना ज्यादा बताया गया है। प्रयागराज में तो विशेष ही है -

अश्वमेध सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः स्नानेन तत्फलम्॥
प्रयागे माघ मासे कुम्भ पर्वेषु, त्रय स्नानस्य यत्फलम्।
अश्र्वमेध सहस्त्रेण तत्फलम् लभते भुवि॥

तिथियाँ - मकर संक्राति १४ जनवरी, माघ (मौनी) अमावस्या, बसन्त पंचमी, माघ पूर्णिमा, महाशिवरात्रि आदि है।

सेवानिवृत्त अभिलेखागार
संपादक - ''विप्र गौरव पत्रिका''
सचिव- राज. वित सेवा समिति,
जयपुर

वेदे संवत्सरविज्ञानम्

डॉ. दे.दयानाथः

अध्ययनविधेरर्थग्रहणपर्यन्तं तात्पर्यात् इति ऋग्वेदभाष्यभूमिकायां सायणः। अर्थग्रहणं तु वेदाङ्गानामध्ययनं विना न सम्भवति। अतएव षडङ्गो वेदोऽयेयो ज्ञेयश्च इति श्रुतिः। षडङ्गेषु ज्योतिषमन्यतमम्। षट्स्वङ्गोविदं प्रधानमिदमप्रधानमिदं गौणमिति विचार एवं अनुचितः। सर्वाण्यप्यङ्गानि वेदार्थावगमने समानरुपेणोपयुक्तानि। किन्तु निर्मूलं शास्त्राध्ययनम् अर्थात् मूलस्य वेदस्याध्ययनेन विना क्रियमाणं शास्त्राध्ययनं व्यर्थमेव इति निश्चप्रचं मतम् ऋषीणां महर्षीणामाचार्याणाञ्च।

वेदाङ्गेषु प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रमिति प्रथमानं ज्योतिषशास्त्रं वेदपुरुषस्य नेत्ररुपतां भजते। तथा च विना ज्योतिषं धर्माचरणमर्थात् यागादीनामनुष्ठानं न सम्भवत्येव। विविधयागानामनुष्ठाने तिथिनक्षत्रादीनां ज्ञानं सुतरामावश्यकम्। सोमयागः, दर्शपूर्णमासयागः, राजसूयः इत्यादीनां समनुष्ठाने अवान्तर क्रियाणां निर्वर्तने च ज्योतिषशास्त्रं बहुधा उपकरोति। वेदाङ्गज्योतिषस्य प्रधानमुद्देश्यं कर्मानुष्ठानयोग्यकालनिर्धारणमेव, न तु फलादेशकथनम्।

भारतीयं ज्योतिषशास्त्रमत्यन्तं वैज्ञानिकम्, अर्वाचीनखगोलादिशास्त्रेभ्य उत्तमञ्च वर्तते। एतस्य शास्त्रस्य मूलं वेद एवेति बहुभिः प्रमाणैः ज्ञायते। छायाग्रहविज्ञानं सर्वादौ ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्। अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ (ऋ. 10.40.8) इत्यादिभिः ऋचाभिः प्रमाणितं वर्तते। अर्वाचीनकाले दृश्यमानः कालविभागः दिनवारपक्षमासवर्षरूपः वेदेष्वेवोपलभ्यते। यथा - शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रतितिष्ठति (तै.सं. - 6.6.10) इति श्रुतिः आयुषः शतमाननिरुपणप्रसङ्गेन शतवर्षाणां गणना दर्शयति। किञ्च वर्षपर्यायत्वेन 'शरत्' इति शब्दः वेदेषु प्रयुक्तः दृश्यते। शरद्वतुः वर्ष एकवारमेवागच्छतीति कारणात् 'शरत्' शब्दः वर्षपर्यायः दृश्यते। तद्यथा - पश्येम शरदश्शतं जीवेम शरदश्शतं नन्दाम शदश्शतं मोदाम शरदश्शतं भवाम शरदश्शतशृणवाम शरदश्शतं प्रब्रवाम शरदश्शतमजीताः स्याम शरदश्शतं (तै.आ. 4.42) इति श्रुतिः सूर्योपासनकाल सूर्यदर्शनाभिलाषं कालपरिगणनया निरुपयति। किञ्च कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (वा. सं. ४०.२) इति वाजसनेयिसंहितायामपि श्रूयते। अत्र 'समा' इति शब्दः वर्षार्थे प्रयुक्तः। तदेव च समानां मास आकृतिः (ऋ. १०.८५.५)इति वर्षपर्यायत्वेन समशब्दः प्रयुक्तः, तस्यान्तर्भागः मासरूपेण जायते इत्यपि इयं श्रुतिः निश्रिचनोति। किञ्च वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ॥ इति ऋक्संहिता। (ऋ.१.१२५.८)। धृतव्रतः वरुणः द्वादश मासान् तेषु उत्पद्यमानान् प्राणिनः अपि जानाति इति, एषु मासेषु

अन्तर्गतमधिमासमपि जानाति इति एतस्य मन्त्रस्यार्थः। अस्यामृचि यद्यप्यधिमासस्य साक्षादुल्लेखः न दृश्यते तथापि सायणादिभाष्येषु एष अर्थ एव दर्शितः। एतेन वर्षे द्वादश मासाः क्वचिदधिकमासः अपि इति विज्ञानमत्रावगम्यते।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः (ऋ.१.१६४.११) इति ऋक्संहिता सूर्यस्य द्वादश अराणि चक्राणि द्युलोकं परितः भ्रमणं कुर्वन्ति अपि नष्टं नहि यान्ति। अस्मिन् चक्रे ७२० विंशत्यधिकसप्तशतं युगलानि आरुढानि इति। अपि च द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि (ऋ.१.१६४.४८) इत्यपि ऋक्। एतयोः ऋङ्मन्त्रयोः तात्पर्यं भवति संवत्सररूपिणि चक्रे द्वादश मासाः भवन्ति ३६० दिवसाश्च इति। रात्रिः दिनमिति एतयोः मिथुनयोः संख्या भवति ७२० इति एतेन वर्षविज्ञानमृग्वेदे स्पष्टं निरुपितं दृश्यते। तैत्तिरीयसंहितायामेवं श्रूयते - मधुश्च माधवश्च शुक्रश्च शुचिश्च नभश्च नभस्यश्चेषचोर्जश्च सहश्च सहस्यश्च तपश्च तपस्यश्चोपयामगृहीतोऽसि संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय त्वा। (तै.सं.१.४.१४) इति। अत्र मधुः माधवः शुक्रः शुचिः नभः नभस्यः इषः ऊर्जः सहः सहस्यः तपः तपस्यः इति मासानां द्वादश नामानि दृश्यन्ते। एतेन एकस्मिन् वर्षे द्वादश मासाः इति वेदः स्पष्टं वदति। अत्रैव संसर्प इति अंहस्पत्य इति च पदद्वयं वर्तते। अत्र सायणाचार्यः संसर्प इत्यस्य अधिमास इति अहंस्पति इत्यस्य क्षयमास इति च भाष्यं करोति। एतेन अधिकमास-क्षयमासानां विज्ञानं वेदमूलमिति स्पष्टं भवति।

किञ्च - मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रञ्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यञ्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्चू शारदावृत् सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। (तै.सं.४.४.११) इति तैत्तिरीयसंहितायाम् ऋतूनां प्रकल्पनं दृश्यते। तथा च मधुमाधवौ वसन्तर्तुः, शुक्रशुची ग्रीष्मर्तुः, नभोनभस्यौ वर्षर्तुः, इषोर्जौ शरदृतुः, सहस्सहस्यौ हेमन्तर्तुः, तपस्तपस्यौ शिशिरर्तुः इति प्रविभागः स्पष्टं श्रूयते। एवं षड्रात्रीः दीक्षितः स्यात्, द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्यात्, पञ्चदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् संवत्सर आप्यते मासं दीक्षितः स्याद्यो मासः स संवत्सरः। (तै.सं. ५.६.७) इत्यपि प्रविभागा उपलभ्यन्ते।

इत्थं तिथि-वार-पक्ष-मास-संवत्सराणां तत्र ऋतूनां प्रविभागः मासानां नामानि ऋतूनाञ्च नामानि वेदे एव स्पष्टं निरुपितानि। तथा च ज्योतिषशास्त्रस्य मूलभूतं यत्तत्वं तिथि-वार-पक्ष-मास-संवत्सरेति वेदे एव स्पष्टं निरुपितं तथा तत्सर्वं वेदमूलम्। एतस्य अङ्गस्य उपयोगः यागादीनामनुष्ठानेनैव परिमितः। तदग्रे एतस्याङ्गस्य विकासः फलादेशादिः एतस्यैव प्रपश्चः इति निश्चयेन वक्तुं शक्यते। तथा च वेदाङ्गज्योतिषस्य क्षेत्रम् यागाद्यनुष्ठानेन परिमितमिति शम्।

सहायकाचार्यः(सं), वेदविभागः,
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,(समविश्वविद्यालयः)
श्रीरणवीरपरिसरः, कोट-भलवाल
जम्मूः-१८११२२

मेरा वतन

पं. नवीन जोशी

जो दुनिया से निराला है,
ये भारत है वतन मेरा।
तू चाँद-सा आबाद रहे,
हँसता रहे सदा ये चमन मेरा॥

अ- मेरे वतन,अ-प्यारे वतन, ये रूप तेरा अनोखा है,
खड़ा रहे तू, खिला रहे तू, तेरे सिवा सब धोखा है।

मेरा मीत है तू,गीत है तू, सदा तुझको ही गाता रहूं,
तेरी आन की खातिर, शान की खातिर, रक्त मैं बहाता रहूं॥

तेरे आँचल में मुस्काऊं,
तेरी गोदी में मिट जाऊं,
बस इतना है मुझे करना।

तेरी मिट्टी में खिल जाऊं,
तेरी सासों में घुल जाऊं,
बस इतना है मुझे करना।

मैं कितना सुंदर, प्यार का एक समन्दर, ये बहन मेरी कहती है,
अब फीका है,नूर चाँद का, दूर वो मुझसे रहती है।
ओ-मेरे दिल की कली, सुन तो सही, बाहें अपनी खोले रख,
मैं आऊंगा, मैं आऊंगा, ये दिल को अपने बोले रख॥

तेरे आँचल में मुस्काऊं,
तेरी गोदी में मिट जाऊं,
बस इतना है मुझे करना।

तेरी मिट्टी में खिल जाऊं,

तेरी सासों में घुल जाऊं,
बस इतना है मुझे करना॥

अ–मात मेरी, सुन बात मेरी, क्यूँ जानकर अनजान बनी,
तू कहती थी ,मैं हँसता रहूं ,फिर क्यों खुद तू वीरान बनी?
रे–मेरे पिता, हो क्यूँ मुझसे खफा,क्यूँ कमी मेरी खलती है?
जब माँ हो संकट में, तब संतान की सूरत रंग बदलती है।

तेरे आँचल में मुस्काऊ,
तेरी गोदी में मिट जाऊ,
बस इतना है मुझे करना।

तेरी मिट्टी में खिल जाऊं,
तेरी सासों में घुल जाऊं,
बस इतना है मुझे करना

शोध छात्र,
पद्मश्री नारायणदास रामानन्ददर्शन अध्ययन एवं शोध संस्थान,
जयपुर

हमारी अनुपम वैदिक संस्कृति

अधिवक्ता हरिशंकर पारीक

भारत की वैदिक संस्कृति अलौकिक सार्वभौमिक एवम् सर्वकालिक है। जीवन के आधार शाश्वत नियम यथा कर्म एवम् तर्पण सभी का आधार विज्ञान है। जीवन में सत्य तथा साधनों की शुद्धता, स्वहित से ऊपर उठकर बहुजन हिताय की सोच परमात्म आराधना एवं मोक्ष की कामना, ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' की अवधारणा, वैदिक संस्कृति से ही सम्भव हो पायी है।

आज के पढ़े-लिखे नवयुवक युरोप की भौतिक चकाचौंध को देख विदेशी संस्कृति का अनुकरण करने में गर्व अनुभव करने लगे हैं पर वे भूल जाते है कि भारत ही धर्म के मामले में विश्व का जगद्गुरू था। युरोप के जो लोग वैदिक संस्कृति का अनुकरण कर सीधा-सादा जीवन, सादा ढीला-ढाला लिबास, कन्द-मूलफल खाकर जंगलों में कुटिया बनाकर निवास को तथा वैदिक मन्त्रोचार को गड़रियों का गान कहकर हँसी उड़ाते थे उन्होंने भी वैदिक संस्कृति का गंभीर अध्ययन कर इस (संस्कृति) को महान् बताया। मिस्र, बेबीलोनिया, असीरिया आदि के मत-मतान्तरों का उद्भव वैदिक संस्कृति से ही है।

मैक्सिको एवम् दक्षिण अमेरिका की संस्कृति पर वेदों का ही प्रभाव है। वैदिक संस्कृति का अध्ययन करने से युरोपीय विद्वानों की नींद उड़ी और मुक्तकण्ठ से इसकी प्रशंसा की, जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने वेदों के उच्च आदर्श को देख अपने जीवन के ४५ वर्ष उनके अंग्रेजी अनुवाद में लगाये ताकि युरोप में लोग वेदों की महत्ता को जान सके। उन्होंने लिखा कि विद्यमान ग्रन्थों में वेद सबसे प्राचीन है। ये यूनान की होमर की कविताओं से भी अधिक प्राचीन हैं क्योंकि इसमें मानव मस्तिष्क की प्रथम उपज मिलती है। युरोप के ही सुप्रसिद्ध दार्शनिक मेटरनिक ने कहा कि - वेद ही एकमात्र ज्ञान का भण्ड़ार है, जिसकी तुलना नहीं हो सकती। शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द जी का शून्य(जीरो) से शुरु सम्मोहित कर देने वाला सम्बोधन कौन भुला पायेगा? जिसे सुनकर युरोपीय विद्वानों को कहना पड़ा कि भारत में मिशनरियों को ले जाना मुर्खता है। ऐसी है हमारी वैदिक संस्कृति।

साहित्याचार्य
ज्योतिषाचार्य,
विद्याधर नगर, जयपुर

भारतीय संस्कृति का आधार- धर्म, समन्वय और आचार

अधिवक्ता नवीन कुमार जग्गी

संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों आदि का निर्धारण करता है। संस्कृति का साधारण अर्थ है- संस्कार, सुधार, परिष्कार, शुद्धि, सजावट आदि।

भारतीय संस्कृति एक विचार, एक भाग अथवा जीवन मूल्य है जिनको जीवन में अपनाकर जीवन के विकास को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति जीवन-दर्शन, व्यक्तिगत और सामुदायिक विशेषताओं, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान के विकास क्रम, विभिन्न समाज, जातियों के कारण बहुत विशिष्ट है। यहाँ भिन्नता-विभिन्नता सहज और स्वाभाविक है। हमारी भारतीय संस्कृति सार्वभौमिक सत्यों पर खड़ी है और इसी कारण वह सब ओर गतिशील है। किसी भी संस्कृति की अमरता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह कितनी विकासोन्मुखी है।

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में मानव कल्याण एवं मनुष्य के सामूहिक विकास की भावना निहित है। यहाँ पर जो भी कार्य होते हैं वे बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की दृष्टि से ही होते हैं। यही संस्कृति भारतवर्ष की आदर्श संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की मूल भावना 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे पवित्र उद्देश्यों पर आधारित है, अर्थात् सभी सुखी हों, सब निरोग हो, सबका कल्याण हो, किसी को भी दुःख प्राप्त न हो, ऐसी पवित्र भावनाएं भारतवर्ष में सदैव प्राप्त होती रहें। मानवता के सिद्धांतों पर स्थित होने के कारण ही तमाम आघातों के बावजूद यह संस्कृति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकती है।

भारतीय संस्कृति में महान् समायोजन की क्षमता है। यहाँ पर विभिन्न संस्कृतियों के लोग आए और यहीं बस गए। उनकी संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति का अंग बन गईं। इसी वजह से भारतीय संस्कृति लगातार आगे बढती जा रही है।

भारतीय संस्कृति का विकास धर्म का आधार लेकर हुआ है, इसी कारण उसमें दृढ़ता है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र आध्यात्मिकता है, जिसका आधार ईश्वरीय विश्वास होता है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न धर्मों और मतों में विश्वास रखने वाले लोग आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं। उनकी दृष्टि में भगवान् ही इस संसार का रचियता एवं निर्माता है। वही संसार का कारण, पालक और संहारकर्ता है।

त्याग और तपस्या भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय संस्कृति के इन प्रमुख तत्वों की वजह

से मनुष्य में धैर्य का गुण परिपूर्ण रहता है। इनके कारण मनुष्य के मन में दूसरों की सहायता एवं उनके प्रति सहानुभूति जैसे गुणों का विकास होता है और स्वार्थ व लालच जैसी बुरी भावनाओं का नाश होता है। भारतीय संस्कृति में उन्मुक्त अथवा स्वच्छंद सुख भोग का विधान नहीं है। मुक्त सुख भोग से मानव में लालच की प्रवृति का उदय होता है और व्यक्ति हमेशा असंतोषी बना रहता है। इसी वजह से भारतीय संस्कृति हर कार्य में संयम का आदेश देती है।

भारतीय संस्कृति में धार्मिक निष्ठा का भी आदर्श है। भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। वे सभी अपने-अपने धर्मों में विश्वास और निष्ठा रखते हैं और दूसरों के धर्म के प्रति सम्मान भी करते हैं। यही भारतीय संस्कृति में धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीन समय से ही बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू-भाग जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिंधु नदियों तक विस्तृत है।

इसके साथ गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण के वनों से आच्छादित पठारी भू-भाग, पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिवृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। भौगोलिक विभिन्नता के साथ इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। इन भिन्नताओं की वजह से ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं।

अनेक विभिन्नताओं के बाद भी भारत की पृथक सांस्कृतिक सत्ता कायम रही है। हिमालय सदैव पूरे देश के गौरव का प्रतीक है। गंगा, यमुना और नर्मदा जैसी नदियों की स्तुति यहाँ के लोग प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। राम, कृष्ण और शिव की आराधना यहाँ पर सदियों से की जाती है। सभी में भाषाओं की विविधता जरुर है लेकिन फिर भी संगीत, नृत्य आदि के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। यहाँ की संस्कृति में अनेकता में एकता भी स्पष्ट रूप से झलकती है। भारतीय संस्कृति स्वाभाविक रूप से शुद्ध है जिसमें प्यार, सम्मान, दूसरों की भावनाओं का मान-सम्मान और अहंकाररहित व्यक्तित्व अंतर्निहित है।

गुरु का सम्मान भी हमारी संस्कृति का ही एक रूप है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही गुरु का सम्मान किया जाता है। गुरु द्रोणाचार्य के मांगने पर एकलव्य ने अपने हाथ का अंगूठा दान में दे दिया था। भारतीय संस्कृति के अनुसार गुरु का स्थान और सम्मान भगवान् से भी बढ़कर होता है।

किंचित् परिवर्तनों के बाद भी भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों, जीवन मूल्यों और वचन पद्धति में एक ऐसी निरंतरता रही है कि आज भी करोड़ों भारतीय खुद को उन मूल्यों एवं चिंतन प्रणाली से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और इससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

बड़ों के लिए आदर और श्रद्धा भारतीय संस्कृति का एक बहुत ही बड़ा सिद्धांत है। बड़े खड़े हों तो उनके सामने न बैठना, बड़ों के आने पर स्थान को छोड़ देना, उनको सबसे पहले खाना परोसना जैसी क्रियाओं को अपनी दिनचर्या में देखा जा सकता है जो हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग हैं।

हम लोग देखते हैं कि युवा कभी भी अपने बुजुर्गों का नाम लेकर संबोधन नहीं करते हैं। सभी बड़ों, पवित्र पुरुषों और महिलाओं का आशीर्वाद प्राप्त करने और उन्हें मान-सम्मान देने के लिए उनके चरणों को स्पर्श करते हैं। छात्र अपने शिक्षक के पैर छूते हैं। मन, शरीर, वाणी, विचार, शब्द और कर्म में शुद्धता हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

शून्य की अवधारणा और ॐ की मौलिक ध्वनि भारत द्वारा ही संसार को दी गयी है। हमारी संस्कृति के अनुसार हमें कभी भी कठोर और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा अपने शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रखना चाहिए। दूसरों को बाएं हाथ से कोई भी वस्तु देना अपमान माना जाता है। देवी-देवताओं को चढ़ाने के लिए उठाए जाने वाले फूलों को सूंघना नहीं चाहिए।

भारतीय संस्कृति एक महान जीवनधारा है जो प्राचीनकाल से सतत् प्रवाहित है। इस तरह से भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है जिसके संरक्षण की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर हैं। इसकी उदारता और समन्व्यवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के दिल और आत्मा में बस्ती है। विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी स्थान रखती है। भारतीय संस्कृति व्यक्ति को व्यक्तित्व देती है और उसे महान् कार्यों के लिए प्रोत्साहित करती है, किंतु यह व्यक्तित्व का चरम विकास सामाजिक स्तर पर ही स्वीकार करती है।

अधिवक्ता
सर्वोच्च न्यायालय, भारत सरकार,
दिल्ली

श्रीकृष्ण अवतरण

राजेश जैन 'चेतन'

जेल में जन्म लिया
ताले सब खुल गये
द्वारपाल निद्रा प्रलाप करने लगे।
बारिश तूफान वेग बढता ही जा रहा था
पानी में उतर वासुदेव डरने लगे।
पांव छू के जमना ने रास्ता बनाया और
शेषनाग छाता बन साथ चलने लगे।
नन्द के महल लाल छोड वासुदेव गये
यशोदा की गोद में हरि मचलने लगे॥
नन्द जी का बेटा सबका दुलारा हो गया।
घर छोड़ पति छोड़ और सन्तान छोड़
गोपियों का रोम रोम श्याम प्यारा हो गया।
लोकलाज छोड़ कर श्याम संग रास किया
गोकुल का लाल सबका सहारा हो गया।
कृष्ण के विरह में गोपियों के आसुंओ से
वृन्दावन सारा जल खारा-खारा हो गया॥

ब्रजमण्डल हर इक गली गली गली गली
राधा-राधा राधा-राधा राधा-राधा गाती है।
राधा नाम उठती है राधा नाम जपती है
राधा जी भी कृष्ण संग गाती इठलाती हैं।
राधे में है कृष्ण और कृष्ण में है राधा
राधा मतलब बस इतना समझ लेना
धारा विपरित बहे राधा बन जाती है॥
धर्मभुमि युद्धभुमि पार्थ हुए मोहयुक्त।
कृष्ण-कंठ गूँज उठा गीता का तराना है।
दिव्य दृष्टि पार्थ मोह तोड़ नहीं सकी जब
हरि-दिव्यरूप देख अर्जुन माना है।
जीत पांडवो की हुई और युद्ध शांत हुआ
हरि बोले अब मुझे निज धाम जाना है।
वादा किया एक दिन आऊँगा ज़रूर यहाँ
''हरियाणा'', जहाँ एक दिन ''हरिआना'' हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कवि,
भिवानी, हरियाणा

नाभस योग

डॉ. सीमा शर्मा

भारतीय ज्योतिष में चन्द्र से, लग्न से, सूर्य से अनेक प्रकार के योगों का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त आकाश में ग्रह-स्थिति से विशेष आकृति बनने से इन योगों को नाभस योग कहा जाता है। यवनाचार्यों ने इनकी संख्या १८०० बताई हैं, किन्तु श्री कल्याण वर्मा के अनुसार ऐसे कुल ३२ योगों का निर्माण होता हैं। वास्तव में जो १८०० की संख्या हैं वह सम्मिश्रण एवं भेद प्रस्तार से बनते हैं।

नाभस योग जो संख्या में कुल ३२ हैं को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम आकाश में ग्रह-स्थिति से विशेष आकृति के कारण बनने वाले योगों को 'आकृति योग' कहा गया हैं जो कि कुल २० हैं। द्वितीय श्रेणी में राशि संख्या के अनुसार बनने वाले योग हैं जिन्हें 'संख्या योग' कहा गया है जो कि कुल संख्या में सात योग है। तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी में ३ आश्रय योग एवं २ दल योग होते हैं, जो कुल मिलाकर ३२ योग हो जाते हैं। नाभस योगों में राहु-केतु की गणना नहीं की जाती अर्थात् केवल सूर्य से शनि पर्यन्त सात ग्रहों को ही मान्यता दी गई है। इन योगों के नाम इस प्रकार है -

१. **आकृति योग** -: नौका योग, कूट योग, छत्र योग, चाप योग(धनुर्योग), यूप योग, शर योग, शक्ति योग, दण्ड योग, कमल योग, वाणी योग, शकट योग, अर्धचन्द्र योग, गदा योग, वज्र योग, यव योग, विह्ल योग, हल योग, श्रृगाटक योग, चक्र योग एवं समुद्र योग।

२. **संख्या योग** -: गोल, युग, शूल, केदार, पाश, दामिना व वीणा योग।

३. **आश्रय-योग** -: जल, मुसल एवं रज्जु योग।

४. **दल योग** -: सर्प योग एवं माला योग।

नाभस योग किस प्रकार से बनते हैं एवं इनके क्या फल होते हैं, यह जानना अति आवश्यक हैं क्योंकि उक्त ३२ योगों में ही सम्पूर्ण चराचर का जन्म होता है अर्थात् प्रत्येक कुंडली मे इन योगों में से कोई एक योग अवश्य होता हैं। इन योगों का प्रभाव जीवन पर्यन्त सभी दशाओं में रहता है अतः इनका विचार फलित-ज्योतिष में अवश्य करना चाहिए।

आकृति योग -: श्री कल्याण वर्मा के अनुसार नाभस योगों का फल इस प्रकार से है।

१. **नौका योग** -: यदि कुण्डली में लग्न से शुरु करके लगातार सात राशियों में (सप्तम भाव तक) सारे ग्रह सूर्य से शनि तक हो तो नौका योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति पानी के माध्यम से या समुद्री यात्रा से जीवन-यापन करने वाला, प्रसिद्धि, वैभव अर्जित करने वाला, धनवान, ताकतवर लेकिन कंजूस या चंचलमति वाला होता है।

२. **कूट योग** –: यदि कुण्डली में चतुर्थ भाव से शुरु होकर लगातार सात राशियों में दशम भाव तक सातों ग्रह हों तो कूट योग होता है। यदि जातक का जन्म इस योग में हो तो जातक झूठा व्यवहार करने वाला, धोखेबाज, दूसरों के काम न आने वाला, क्रूर स्वभाव वाला होता है।

३. **छत्र योग** –: यदि कुण्डली में सप्तम भाव से शुरु होकर लग्न तक लगातार सात राशियों में सभी सात ग्रह हो छत्र योग बनता है। इस योग के प्रभाव से जातक दानी, दयालु, राजप्रिय, कुशाग्र बुद्धि वाला एवं ऊँचे विचारों वाला होता है।

४. **चाप योग** –: यदि जन्म कुण्डली में दशम भाव से प्रारम्भ होकर चतुर्थ भाव तक लगातार सात राशियों में सातों ग्रह हों तो चाप योग का निर्माण होता है।

५. **यूप योग** –: लग्न से शुरु होकर चतुर्थ भाव तक सभी सात ग्रह हों तो यूप योग होता है। इस योग में जन्मा व्यक्ति त्यागी, धन-सुख से सम्पन्न व सत्य पारायण होता है।

६. **शर योग** –: चतुर्थ से सप्तम भाव तक लगातार सभी सात ग्रह हों तो शर योग होता है। इस योग के कारण जातक शस्त्र, हथियार बनाने वाला, वन प्रदेशों की यात्रा का शौकीन, अत्यधिक उत्तेजित होने वाला, हिंसक प्रवृत्ति वाला होता है।

७. **शक्ति योग** –: सप्तम से दशम भाव तक लगातार सभी सात ग्रह हों तो शक्ति योग बनता है। इस योग के कारण जातक धन-हीन, दु:खी, आलसी लेकिन संग्रामादि में निपुण एवं स्थिर विचारों वाला एवं सर्वप्रिय होता है।

८. **दण्ड योग** –: दशम से लग्न तक लगातार सभी सात ग्रह होने पर दण्ड योग का निर्माण होता है। दण्ड योग में उत्पन्न व्यक्ति धन-हीन, दु:खी, अन्य लोगों द्वारा अपमानित, अपने लोगों द्वारा परित्यक्त होता है।

९. **अर्धचन्द्र योग** –: केन्द्र स्थानों को छोडकर अन्य किसी भी स्थान से शुरु होकर लगातार सात राशियों में ग्रह हो तो अर्धचन्द्र योग बनता है। इस योग के होने से जातक सौभाग्यशाली, सुंदर शरीर वाला, धनवान व राजा का प्रिय होता है।

१०. **गदा योग** –: आस-पास के दो केन्द्र अर्थात् लग्न-चतुर्थ, लग्न-दशम, सप्तम-चतुर्थया-सप्तम-दशम भाव में सभी सात ग्रह हो तो गदा योग होता है। इस योग के प्रभाव से जातक शास्त्रों में कुशल, यज्ञकर्ता, स्वाभिमान की रक्षा करने वाला, धन,स्वर्ण एवं रत्न आदि से युक्त होता है।

११. **वज्र योग** –: लग्न एवं सप्तम भाव से शुभ ग्रह एवं चतुर्थ व दशम में पापग्रह हों तो वज्र योग बनता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति आयु के मध्यावस्था में दु:खी, निरोगी, लोकप्रिय लेकिन भाग्यहीन होता है।

१२. **यव योग** -: लग्न व सप्तम भाव में पापग्रह एवं चतुर्थ व दशम भाव में शुभ ग्रह हों तो यव योग बनता है। यव योग में उत्पन्न व्यक्ति नियम से रहने वाला, मंगलमय आचरण वाला, मध्यमावस्था में धन व सुख से युक्त, दानी एवं धनी होता है।

१३. **कमल योग** -: चारों केन्द्रों में शुभ ग्रह (गुरु, शुक्र, बुध व अधिक कलायुक्त चन्द्र) स्थित हो, सूर्य यथासंभव कहीं भी रह सकते हैं तब कमल योग का निर्माण होता है। कमल योग के प्रभाव से जातक यशस्वी, दीर्घायु, सम्पत्तियुक्त, सुंदर व बहुत भूमि का स्वामि होता है।

१४. **वाणी योग** -: सभी शुभग्रह (उपरोक्तानुसार) पडाकर में या आपोल्किम में हों तो वाणी योग बनता है। इसके प्रभाव से जातक सम्पत्ति एकत्र, संचय करने में निपुण, स्थिर सुख व स्थिर धन से युक्त एवं पुत्र सुख से उत्पन्न होता है।

१५. **शकट योग** -: लग्न एवं सप्तम भाव में सभी सूर्य से शनि तक सातों ग्रह हों तो शकट योग का निर्माण होता है। इस योग के जातक रोगी, खराब स्त्री वाला, धनहीन, गाड़ी से जीविका चलाने वाला होता है।

१६. **विह्ग (पक्षी) योग** -: चतुर्थ एवं दशम में समस्त ग्रह हों तो विह्ग योग होता है। इसके प्रभाव से जातक घूमने वाला, दूत कार्य करने वाला, कलह प्रिय होता है।

१७. **श्रृगाटक योग** -: लग्न पंचम व नवम अर्थात् सभी ग्रह त्रिकोण में हों तो श्रृगाटक योग बनता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति बुद्धि में साहस दिखाने वाला, लोकप्रिय धनवान, सुखी किन्तु स्त्रियों से द्वेष करने वाला होता है।

१८. **हल योग** -: लग्न के अतिरिक्त किसी भी स्थान से प्रारम्भ होकर सभी ग्रह परस्पर त्रिकोण में हों तो हल योग बनता है। इसके प्रभाव से जातक बहुत खाने वाला, दरिद्र दुखी रहने वाला किसान होता है।

१९. **चक्र योग** -: लग्न से प्रारम्भ होकर 1-1 राशी छोडकर यदि 6 राशियों में सब ग्रहों अर्थात् 1-3-5-7-9-11 भावों में सभी सात ग्रह स्थित हो तो चक्र योग बनता है। इस योग के प्रभाव से जातक बड़ा राजा होता है। इसके सामने सभी सिर झुकाते हैं अर्थात् सर्वसमर्थ राजा के समान होता है।

२०. **समुद्र योग** -: द्वितीय भाव से प्रारम्भ होकर 1-1 राशी छोडकर यदि 6 राशियों में सब ग्रह हो अर्थात् 2-4-6-8-10-12 भावों में सभी सात ग्रह स्थित हो तो समुद्र योग बनता है। इसके प्रभाव से जातक बहुधनी, सम्पत्ति के भोगों से युक्त, लोकप्रिय व मानसिक सन्तुलन वाले होते है।

संख्या योग -: उपरोक्त बीस आकृत्ति योगों के बाद सात संख्या योग होते हैं जो कि पूर्णतः संख्या पर ही आधारित है, वे सातों निम्न है -

१. सभी सातों ग्रह यदि एक राशि में हों तो गोल योग बनता है इसके प्रभाव से जातक दरिद्री, आलसी, विद्या व मान-सम्मान से रहित, दु:खी व दीन होता है।

२. सभी ग्रह यदि दो राशियों में होते हों तो युग नामक योग होता है। इसके जातक पाखण्डी धनहीन, लोक द्वारा बहिष्कृत, धर्म व सम्मान से रहित होता है।

३. तीन राशियों में सभी ग्रह हों तो शूल योग होता है, इससे जातक तीखे स्वभाव का हिंसक, आलसी, क्रोधी लेकिन बहादूर, युद्ध में प्रशंसा पाने वाला होता है।

४. सभी सात ग्रह यदि चार राशियों में हों तो केदार योग बनता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति सत्यवादी, सुखी, चंचल स्वभाव का एवं बहुत से कार्यों में उपयोगी होता है।

५. पाँच राशियों में सभी ग्रह हों तो पाश नामक योग बनता है। इस योग के प्रभाव से जातक दबाव में रहने वाला, कार्य में उत्साही, बहुत बोलने वाला एवं अनेक नौकरों वाला होता है।

६. छः राशियों में सभी ग्रह के होने से दामिनी योग बनता है। इसके प्रभाव से जातक उपकार करने वाला, धनाढ्य, विस्मित मति का, समृद्ध, धैर्यशाली व विद्वान होता है।

७. सात राशियों में सभी ग्रह स्थित हों तो वीणा योग होता है। इसके प्रभाव से जातक शास्त्रों में पारंगत, अच्छा वक्ता, सुखी, बहुत से नौकरों वाला एवं कीर्तिवान होता है।

आश्रय योग -

१. समस्त सातों ग्रह द्विस्वभाव राशि में होने से नल योग का निर्माण होता है। इस योग के प्रभाव से जातक धन का संचय करने वाला, निपुण बन्धुओं का हितकारी एवं किसी अङ्ग में न्यूनाधिकता वाले होते है।

२. समस्त ग्रह स्थिर राशियों में हों तो मुसलयोग बनता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति मान, धन व ज्ञान से युक्त, राजा के प्रिय व सदा काम में लगे रहने वाले होते हैं।

३. सभी सातों ग्रह चर राशियों में स्थित हों तो रज्जू योग बनता है। इसके प्रभाव से जातक घूमने का शौकीन, सुन्दर और परदेश में काम करने वाला होता है।

दल योग -

१. सभी पाप ग्रह चतुर्थ, (शनि व मंगल पाप ग्रह में आएंगे, बुध संगति भेद से एवं क्षीण चन्द्र पाप ग्रह में आएंगे। सप्तम व दशम भाव (तीन केन्द्रों में) हो तो सर्पयोग बनता है। इस के प्रभाव से जातक मिश्रित स्वभाव वाला, दरिद्र, क्रूर व दीन होते है।

२. सभी शुभ ग्रह उपरोक्तानुसार तीन केन्द्रों में स्थित हों तो माला योग होता है। इसके प्रभाव से जातक सुखी, वाहन, वस्त्र व धन से व्याप्त, सुन्दर व कई स्त्रीयों वाला होता है।

ज्योतिषाचार्य (लब्धस्वर्णपदक),
टी.जी.टी. संस्कृत अध्यापिका, दिल्ली सरकार

राजस्थानीयेषु आधुनिकसंस्कृतमहाकाव्येषु रामदेव चरितम् महाकाव्यम्

डॉ. योगेश कुमार

वर्तमान संस्कृत-साहित्य-सर्जनायां निरतेषु जयपत्तनीयविद्वांन मम् धीमान् शिष्यः रामदेव साहूः अपि स्वकीयं उत्कृष्टं स्थानम् आदत्ते। एतेन भूरि परिश्रमं विधाय संस्कृतभाषायाः पारम्परिकविधासु, अपिच नूतनासु विधासु रचनाकार्यं विहितम्। एतदीय रचनाकार्ये रामदेवचरितम्, चित्तौडचूडामणिः, कश्मीरगौरवम् चेति त्रीणि महाकाव्यानि, नवजयपुरम् इति खण्डकाव्यम्, रुक्मिणीहरणम् इति चम्पूकाव्यं, साहित्यकाण्ठाभरणम् इति साहित्यशास्त्रीयः लक्षणग्रन्थश्च प्रायेण चर्चितानि सन्ति। आसु रचनासु रामदेवचरितम् महाकाव्यम् मया सम्यगालोकितम्। श्री साहू विरचितम् महाकाव्यं राजस्थानस्य लोकदेवतां रामदेवम् लक्ष्मीकृत्य तज्जीवनचरित्रवर्णनव्याजेन विरचितम् अस्ति। यद्यपि महाकाव्येऽस्मिन् पर्याप्ता साहित्यिकता वरीवर्त्ति तथापि मद्विचारेण अस्य महाकाव्यस्य इतिवृत्तं वस्तुतः मध्यकालिकं राजस्थानीयं ऐतिह्यम् अवलम्ब्य तिष्ठति अतः इदं महाकाव्यं राजस्थानीय-ऐतिहासिक-संस्कृत महाकाव्येषु स्थानं लभते। दिल्लीनरेशस्य अनङ्गपालस्य राजकुलमस्यैतिह्यस्यमूलमास्ति। इतिहास प्रसिद्धस्य राजपूतकालस्य अन्तिम-चरणे राजस्थानीयानां राज्ञां स्थितिं वर्णयित्वा यथा कालिदासीयरघुवंशे रघूणामन्वयं वक्ष्यमाणमस्ति तद्वत् अत्रत्यराज्ञामपि त्यागमयी तपोवनप्रियां प्रवृत्तिमत्र कविः वर्णयति।

नायिकायाः वर्णनस्य पृष्ठभूमौ स्त्रियः आदर्शाः राजस्थानीय - संस्कृत्यानुकुलं निदर्शिताः सन्ति। पातिव्रत्यस्य आदर्शमालम्ब्य अनङ्गपालस्य धर्मपत्नी वने कष्टान् सोढ्वापि प्रचरति तत्र करुणस्य काचिदपूर्वेवच्छाया प्रतिभाति। वनभूमौ बाह्यप्रकृतिं चित्रीकुर्वन् कविः अत्र आत्मनः अपि प्रकृतेः साहचर्ये सूक्ष्मा सहृदयभावनाम् उपस्थापयति यथा-

आत्मानेषु प्रतिकृतिमहो निम्बवृक्षस्थ काकाः,
बिम्बादर्शेष्विव नु कुहुचिद् दृश्यमाणा विशेषाः।
लोकं लोकं विविधविधिभिश्चेष्टितैः शब्दयन्तः,
वृक्षश्रृङ्गेष्वपि च परितश्चक्रमैरुत्पतन्ति॥

प्रकृतिवर्णनस्याङ्गभूते प्रातःकालवर्णने कवित्वेन सह व्यञ्जनाशक्तेः प्राचुसर्यस्यापि निदर्शनं भवति। तच्च सहजमेव परम्परागतमहाकाव्यकाराणां प्रकृतिवर्यवेक्षणक्षमतां स्मारयति नूनं। यथा अधोलिखितश्लोके -

अस्मिन्काले रविरपि पुरो वीक्ष्य रुद्धो निशेशं,
मन्देहैर्यो दिवि रणरतो भारतं शङ्कमानः।
भूमौ भीष्मं क्षितिजविदिशा भीममन्य शिखण्डिं,
किच्चित्स्तब्धोऽभवदनवधिः प्राणिनां किं नु चित्रं॥

अस्मिन् महाकाव्ये कविः अन्तःप्रकृतिं चित्रीकुर्वन् भावसूक्ष्मतामपि उपस्थितयाति मानवमनोभावानां वर्णनेऽपि कविहृदयस्य संवेदनापूर्णा गतिशीलता प्रतिभाति। महाकाव्यस्य द्वितीयसर्गे नृपदम्पत्योः वार्तालापप्रसंगे अस्या एकम् उदाहरणम् एवं प्रकारेण उद्धर्त्तुं शक्यते -

भस्मीकृतो भगवता भवता रतीशः, ईश ! क्षितीश इह नामगतैक्यतस्ते।
ईर्ष्यादृगन्धतनुता तनुतामगम्यात्, कोपाश्रयत्वमनुगामिनि वा कथञ्चित्॥

यद्यपि महाकाव्येऽत्र वर्ण्यविषयगतं वैविध्यम् आत्मनि आवर्ज्य उपस्थितोऽस्ति। महाकाव्ये अङ्गीरसः श्रृंगारः पर्याप्तपुष्टो वर्तते। विभावनुभावव्यभिचारिभीः पुष्टस्य रसस्य उपस्थापने कविनाऽत्र परम्पराया अनुसरणं कृतम्। तत्र कृतम् विश्रृङखलता अथवा न्यूनतायाः न किमपि स्थानं वरीवर्त्ति। यथा -

देवाङ्गना दिगिभलक्ष्मविभाच्छलेन, यन्मङगलाय वदनेषु मृदुत्वमुद्राम्।
जग्मुर्नवाऽद्य दरदन्तद्युतिस्मितेषु, ता एवतत्र वचनेषु विशेषभावम्॥

अङ्गभूतानामन्येषां रसानां वर्णनेऽपि अभिरुचिं दर्शयति। तत्र न केवलं रसवर्णने अपितु रसनिष्ठ स्थायिभवस्य तत्तद्गुणानां च समावेशोऽपि कविना कृतः। अत्र इदमुल्लेखनीयं वर्तते यद् अस्मिन् कस्मिन्त्रपि श्लोके रसद्वयस्य व्याभिचारो भावस्य भावान्तरेण संकरस्य भावशबलतादि रसवदलङकाराणां वा स्थानं नास्ति। अङ्गभूतस्य वीररसस्य वर्णने स्थायिनः परिपोषो विशेषतः एवं प्रकारेण वर्णनीयोऽस्ति -

एकैकमन्तरितभागमथावलोक्य, प्रत्येकतो द्रुततमां गतिमन्वगच्छत्।
क्रुद्धो जगाम जगदब्धितटापरंतं, क्षुब्धं जलं जलनिधेस्तटतामिवेत्थम्॥

रामदेवचरितमहाकाव्ये यद्यपि वैदर्भी रीतिरेव कविना समाचरिताऽस्ति तथापि शब्दविन्यासे क्वचित् अलङाकराणा सन्निवेशे कृत्रिमतायाः समाचरणात् किलष्टताऽपि समायाता। यथा मध्येन्द्र नीलमणिमण्डितयष्टिकाङ्क वातायनादि, अध्यासितासितविभावलयाधिदीप्र चन्द्रप्रभैव इत्यादि पदेषु दीर्धसमास तथा काठिन्यं तु वर्तते एवं अनेन यष्टिकाङ्क द्रीप इत्यादि पदेषु परुषावृत्तिवर्णानां प्रयोगात् क्लिष्टताऽपि वर्तते। क्वचित् तु पदशय्यायां प्राञ्जलताऽपि अस्ति अतः यत्रकुत्रचित् हृदयावर्जकाः श्लोकाः अपि कविवाण्या प्रस्फुटिताः। यथा -

द्वीपं द्विपाधिपतिवाह इव प्रशासन्, प्राशंसि जम्बुकरदैः करुणाकरोऽयम्।
विश्रान्तिधाम महतां गुणसन्ततीनां, संसारसन्ततिरपारयशोऽम्बुवाहः॥

काव्यगुणानां समावेशादृष्टयाऽपि रामदेवचरितमहाकाव्यं उल्लेखनीयमस्ति। यतो हि माधुर्यस्य

ललितोचितसन्निवेशे कविः अत्र पर्याप्तं सफलो बभूव इति सुतरां वक्तुं पार्यते। क्वचित् प्रसादगुणस्य प्राञ्जलताऽपि वर्तते। ओजसः वर्णनं न्यूनतरम् अस्ति। महाकाव्यस्य श्रृङ्गारप्रधानकलेवरमयत्वात् कवेरेतादृशी प्रवृत्तिः सहजा चकास्ति। अत्र माधुर्यस्य एकः श्लोकः उदाह्रियते –

मतङ्गजानां मदवारिभिर्या, निषिञ्चिता तुङ्गतया द्रुमालिः।
विभाति सा भूधरश्रृङ्गलग्ना, शिरः प्रसूनावलिशेखरेह॥

अत्र न केवलं माधुर्यम् अपितु प्रसादस्यापि समावेशो वर्तते। माधुर्योचितस्य अनुप्रसालंकारस्य ललितावृत्तिगतानां वर्णानां प्रयोगस्य यादृशी चारुताऽस्ति तादृशी एव प्रसादोचिता वर्ण विन्यासे दीर्धसमासा संघटनाऽविकवेः रसवर्णनपाटवमभिव्यनक्ति यथा एकादशसर्गस्य अधोलिखितश्लोके –

चण्डादुच्चण्डं योऽट्टहासं प्रकुर्वन्, ब्रह्माण्डाण्डञ्चाखण्डलैरावतेव।
कुर्वन् काण्डेऽस्मिन् खण्डयन् खण्डखण्डं, तीक्ष्णां तृष्णां किं चेतसा चीयते न॥

रामदेवचरितमहाकाव्ये ध्वनिकाव्यानामुदाहरणान्यपि सुतराम् अन्वेष्टुं शक्यानि सन्ति। यथा एकं पद्यम् उदाहरामि –

रत्नाकरे च यदि नाथ सति स्वनाथे, धेयान्न युक्तमुत काचमयीं विभूषाम्।
ध्यायाम्यतश्चिरमहं चरणौ त्वदीयौ, एकाग्रचित्तविषयौ विषवृक्षहारिन्॥

अत्र स्वनाथ इति सम्बोधने रत्नाकरस्य गर्वतिशयात् काचमयत्वेऽपि काञ्चनवत् विभूषणस्य आधाने अमवृत्त्याः मूर्खजनस्य न तादृशागुणाधायकत्वमिति विधिकथनेऽपि प्रतिषेधरुपस्यार्थस्य ध्वनिः निहिताऽस्ति। विषवृक्षहारिन् इत्यस्मिन् सम्बोधनेऽपि निष्ठातिरेको ध्वन्यमानः सन् भक्तिरसस्य उत्कर्षं व्यनक्ति एवम् एतादृशानि पद्यानि ध्वनिकाव्यदृष्ट्या उत्तमकाव्यस्य उदाहरणानि सन्ति इति रक्तुं शक्यते।

रामदेवचरिते अलङ्कारविन्यासो उपस्थापयितुं कृतोऽस्ति। यथा 'वेधाऽपि द्वेधाऽत्र विधाय लोके', भूपालमौलिमणिमन्दिर मिन्दु मौलेः, समित्सु दीप्तासु नृपं समुत्सुकम् इत्यादिपद्येषु दर्शनीयम् अस्ति। कविना अर्थालङ्काराणां प्रयोगोऽपि पर्याप्तं पाण्डित्यं दर्शितं यथा –

उद्गत्वरे भानुविभेव सैव, दीप्ति जगामावनिपास्य देशे।
उपास्यती वा जयशल्वमेरोः, विलासकाले दयितुः श्रवाय॥

अत्र उपमालङ्कारस्य विच्छित्तिः अपूर्ववास्ति। षष्ठसर्गे यमकालंकारस्य श्लेषालंकारस्य च युगपच्छटा वर्तते। यथैकमुदाहरणम् श्रव्यमस्ति –

तत्वतस्तु दिविषत्कुलं पुरा, जानकीशदिशि कीशकोऽपि सन्।
मानवीं हि गतवान् यथैषकः, सम्प्रतीह किमु जानते न वीम्॥

एवमलंकृतकाव्यसौन्दर्यस्य दर्शनं महाकाव्येऽस्मिन् दृश्यते। रामदेवचरिते वस्तुतः मानवीय व्यक्तित्वानां चित्रणं आदर्शाणां – प्रबोधनं च वरीवर्ति। अत्र यद्यपि काव्यवस्तुत्वेन समकालिकचरित्रम् गृहीतं तथापि कवि

– चरित्रपक्षेण पर्याप्तं प्रभावितो दृश्यते। अत्र प्रस्तुतं याथार्य्यं कल्पनामिश्रितमस्ति। विश्लेषणात्मक चरित्रस्य परिशीलनत्वात् महाकाव्यरुपेण रामदेवचरितस्य प्रतिष्ठापना वस्तुतः युगीनतायाः सफलान्वितिम् आलम्बते। कवेः मानवस्य स्वजीवितं प्रति उत्तमा रुचिस्त्र एतत् शास्त्रीयं सत्यं प्रकटयति यत् साहित्यस्य उन्नयनाय वर्तमानेऽपि उत्तमानि जीवनमूल्यानि रक्षणीयानि।

अस्य महाकाव्यस्य साहित्यिकं महत्वं प्रतिपादयता रामदेवविलास महाकाव्यस्य कर्त्रा पं.रामविलासशर्ममहोदयेन कथितम्–

काव्यं सुष्ठु विराजते ह्यविकलं भाग्यं न गर्हास्पदं,
सुस्वादूत्तमभाव रञ्जितमहो श्रीरामदेवाभिधम्।
साहो! त्वं वयसाऽसि सम्प्रति नवो भूयस्तनीयान् परं,
श्लाघ्या ते रचना ललामवचसा सिद्धा च वृद्धप्रिया ॥
अस्मत्काव्य कलाविलाससुषमालोको बहुर्व्यापकः,
तत्र स्याद्यदि मुद्रणस्य गरिमा किं स्वर्गसौख्यं पुनः।
एतट्टंकितकाव्यनीरजरजोनिर्व्याजपाने परं,
चेतः षट्पद इत्थमत्र विमुखोऽकारि त्वया साधुना॥
पूर्वजानां यशः क्षेत्रे महाराष्टे विशेषतः।
निर्मितानि काव्यानि बहूनि कविभिर्धिया॥
शिवोभिधो महाराष्ट्रे ह्यभवद्वीरकेसरी।
पुरस्कृत्य च तं काव्यनिचया रचिताः कति॥
लोकवन्द्यो मरुत्सङ्गे रामदेवः प्रभुः कलौ।
उपेक्षितस्त्वयाऽकारि नायकः काव्यप्राङ्गणे॥
अतस्तुभ्यं धन्यवादा दातुं सहस्त्रशः।
विलासो रसविद्भृङ्गः काव्यशीधु विमूर्च्छितः॥

निदेशक
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

हिन्दू धर्म में योग की अवधारणा

सुश्री प्रिया सैनी

हिंदू-धर्म का पाँच हजार वर्षों का इतिहास हैं। यह विश्व के चार-पाँच प्रमुख धर्मों में से एक है। इसे सनातन धर्म भी कहा जाता है। इस धर्म का विभिन्न दृष्टि कोणों से अध्ययन किया गया और इससे एक ऐसी गतिशील आध्यात्मिक परम्परा का निर्माण हुआ जो सम्पूर्ण मानव-जाति के करीब सातवें भाग का प्रेरणा-स्त्रोत है। धर्म के क्षेत्र में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जब हम हिंदू-धर्म के बारे में बोलते है। तब अर्थ किसी एक धर्म से नहीं होता। यह कई धर्मों का एक संघ है। जैसे वैष्णव धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म जो अपने-आप में पूर्ण धर्म हैं। वैष्णव धर्म, शैव धर्म और शाक्त धर्म के अपने पुराणशास्त्र, कर्मकाण्ड और धार्मिक संगठन है और लाखों इनके अनुयायी है। हिंदू-धर्म परमसत्ता तक पहुँचने के कई मार्गों को एक सूत्र में बाँधने वाला धागा है। हिंदू-धर्म का धर्म के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पता इस बात से चलता है कि यह सभी धार्मिक तथ्यों का वर्गीकरण करता है। हिंदू-धर्म मनुष्य को योग शीर्षक के अंतर्गत पूर्णता प्राप्त करने के विशिष्ट निर्देश देता है। यह मानवीय स्वभाव और प्रवृत्ति के अनुसार, चार प्रकार के योगों का वर्णन करता है। जो हैं ज्ञान योग, भक्ति योग, राज योग और कर्म योग है।

ज्ञान योग—ज्ञान योग उन व्यक्तियों के लिए है। जो ज्ञान के द्वारा परम सत्ता, अर्थात् ईश्वर से एकाकार होना चाहते है कुछ ऐसे लोग है, जो स्वभाव से दार्शनिक होते हैं। उनके लिए प्रत्यय का अधिक महत्त्व है। ''सुकरात'' और ''बुद्ध'' इसके उदाहरण है। इस योग का लक्ष्य अज्ञानता के साम्राज्य को विवेक से नष्ट करना है। कहा गया है कि 'ज्ञान योग' परमसत्ता तक पहुँचने का सबसे छोटा मार्ग है। लेकिन यह सबसे कठोर मार्ग भी है।

भक्ति योग—मानव जीवन में जितनी भावनायें है उनमें सबसे शक्ति शाली और व्यापक भक्ति-भावना है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जिसकी भक्ति करता है, वह उसके समान बन जाना चाहता है और यह सबसे अधिक व लोकप्रिय है। सोलहवीं शताब्दी के महान् हिन्दी कवि गोस्वामी तुलसीदास इस योग के महान् अनुयायियों में से एक है। जिस प्रकार गंगा की धारा सागर की ओर निरन्तर बहती है। उसी प्रकार भक्तों का मन निरन्तर ईश्वर की ओर अनुधावित होता है। मनुष्य ईश्वर की आराधना विभिन्न प्रकार से करता हैं। ईश्वर के कई रूप हैं। जब वह अवतार लेता है। तब मनुष्य की उसके प्रति अगाध भक्ति उमड़ पड़ती है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् ''जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ।''

राजयोग–राजयोग अन्तर जगत् की ओर एक यात्रा है। यह स्वयं को जानने का या यूँ कहें कि पुनः पहचानने की यात्रा है। राजयोग अर्थात् अपनी भागदौड़ भरी जिन्दगी से थोड़ा समय निकालकर शान्ति से बैठकर आत्म निरीक्षण करना। इस तरह से समय निकालकर हम अपने चेतना के मर्म की ओर लौट आते है। अपने मन की शान्ति और सच्ची शक्ति की ओर लौटना ही राजयोग है।

कर्मयोग–ईश्वर तक पहुँचने का चौथा मार्ग है कर्मयोग। कर्म जीवन का मुख्य तत्त्व है। सच तो यह है कि मनुष्य कर्म करने के लिए ही बना है। हिन्दू-धर्म कहता है कि ईश्वर को पाने के लिए मठ की शरण लेने की जरूरत नहीं है। मनुष्य अपने कर्म को निस्वार्थ भाव से करके भी ईश्वर प्राप्त कर सकता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥''

अर्थात् मनुष्य को कर्म करने में ही अधिकार रखना चाहिए फल में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

अनासक्त करके मतलब मनुष्य कर्म को निस्वार्थ भाव एवं कर्म निष्ठ बनाकर भी जीवन के मूल तत्त्व (मोक्ष) की प्राप्ति कर सकता है और यही कर्मयोग का मूल मर्म है।

इस प्रकार अत्यन्त व्यापक, विकसित व प्राचीनतम हिन्दू धर्म में योग का अपना असीम महत्त्व है। व्यक्ति चाहे मार्ग कोई भी अपनाये पर उसका मूल उद्देश्य एक ही होता है, वह अपनी रुच्यानुसार अपने अनुकूल योग मार्ग का चयन कर उस पर चल कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है।

शोधछात्रा,

पद्मश्री नारायणदास रामानन्ददर्शन अध्ययन एवं शोध संस्थान,

जयपुर

कर्मन की गति न्यारी

श्रीमती अंजना शर्मा

एक बहुत बड़ा सेठ विपुल सम्पत्ति छोड़कर मरा। उसका एक मात्र पुत्र उस सम्पत्ति का मालिक था। धनी लोगों के पुत्र प्रायः दुराचारी हुआ करते हैं। इसी दोष के कारण सुमेरुपरिमित सम्पत्ति सेठ के पुत्र ने थोड़े दिनों में ही नष्ट कर दी। सम्पत्ति का नाश होने से उसे अत्यन्त कष्ट होने लगा। जिन धूर्त चापलूसों के कुसंग में पड़कर उसने धन गँवाया था, अब वे मीठी-मीठी बातों की जगह उसको फटकार देने लगे।

जब खाना मिलने में भी तंगी आने लगी तब उसकी स्त्री ने कहा - 'स्वामिन्! कुछ मेहनत मैं करती हूँ, कुछ मेहनत आप करें, तो निर्वाह हो सकता है।' स्त्री ने सूत कातने, आटा पीसने तथा धान कूटने आदि की मेहनत-मजदूरी शुरु कर दी और उसका पति (सेठ का पुत्र) जंगल में घास तथा लकड़ी काटने जाने लगा। घटनाचक्र में पड़कर इस दम्पती को ऐसा मोटा काम करने पर बाध्य होना पड़ा जो कभी किया नहीं था। जिन कोमल हाथों में फूलों की पंखुडी चुभा करती थी तथा सेमल की रुई के गद्दे कड़े मालूम पड़ते थे, उन हाथों से ऐसा कठिन काम करने के कारण सेठ के लड़के के हाथ-पाँव में कांटे चुभ जाते और छाले पड़ जाया करते थे। इस कष्ट से एक दिन वह एकान्त स्थान पाकर विलाप करने लगा।

उस दिन पास बहने वाली उस जंगल की नदी के किनारे 'कर्मदेवता' और 'लक्ष्मी' दोनों विचार रहे थे। सेठ के लड़के का रोना सुनकर लक्ष्मी बोली- देखो! मेरे बिना जीव का ऐसा हाल होता है। जैसे -

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव, अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥

मेरा साथ (सहारा) पाकर पहले यह क्या था और अब मेरे बिना इसकी क्या दशा है ? हाथ-पाँव आदि इन्द्रियाँ, नाम, बुद्धि, बोलचाल पहले जैसी ही है, केवल धन की गरमी के बिना इसकी यह हालत हो गयी है। लक्ष्मी की यह बात सुनकर कर्मदेवता ने कहा- मेरे बिना इसकी यह गति हुई है -

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥

सारा संसार कर्म का वशवर्ती होकर दारुयोषित् की तरह नाच रहा है, इत्यादि बहुत कुछ कथनोपकथन से दोनों में विवाद उपस्थित हो गया। कर्म ने कहा - हे लक्ष्मी ! तुम इसको धन देकर धनी करो। यदि

तुम्हारे दिये धन से ये धनी हो गया, तो तुम्हारा कथन सत्य है और जो धन पाकर भी यह ऐसे का ऐसा कोरा ही रहा तो फिर अधिकता मेरी होगी यानि मैं जीतूँगा।

यह निर्णय हो जाने पर लक्ष्मी ने उसके सामने रास्ते में दो हीरे फेंक दिये। सेठ का पुत्र होने के नाते वह हीरों की परख जानता था। हीरों को उठाकर बडे हर्ष से घर को चला। गर्मी का समय था, प्यास लगी। रास्ते में एक छोटी सी नदी थी। झुककर पानी पीने लगा तो हीरे जेब से निकल कर नदी में गिर पड़े। गिरते ही खाद्य सामग्री जानकर मछली ने निगल लिया। घर आकर स्त्री सहित पश्चात्ताप करने लगा। उस रोज हीरे मिलने की खुशी में बोझभरी तैयार गठरी वह वहीं जंगल के रास्ते में पटक आया था।

अगले दिन सेठ तनय फिर नित्य की तरह जंगल में लकड़ी काटने पहुँचा। उसकी दीन-दशा देखकर लक्ष्मी जी ने एक सच्चे मोतियों की माला उसके रास्ते के बीच में रख दी। उसने माला उठाकर अपनी पगड़ी में रख ली। रास्ते में आने वाली नदी में स्नान हेतु वह ठहरा, माला सहित पगड़ी किनारे पर रख दी। चील खाने की वस्तु समझकर माला को पगड़ी सहित लेकर उड़ गयी। आज भी सेठ पुत्र खाली हाथों घर जाकर पत्नी के साथ शोक करने लगा।

तीसरे दिन सेठ पुत्र फिर रोज की तरह लकड़ी काटने जंगल में पहुँचा तो लक्ष्मी ने रास्ते में सोने के सिक्कों की थैली फेंक दी। उसे सेठ के पुत्र ने उठा ली। आज सेठ सीधा घर की तरफ चला। दो दिन धोखा खाने के कारण बीच में कहीं नहीं ठहरा। घर में पहुँचने पर देखा कि स्त्री घर पर नहीं थी। किसी पड़ोसी के यहाँ गयी थी। उसने घर के प्रधान दरवाजे के पास थैली रख दी और अपनी स्त्री को बुलाने चला गया। इतने में उसकी स्त्री से मिलने पड़ौस की एक महिला आयी। उसने दरवाजा खोला तो रास्ते के पास एक थैली देखी। धीरे से थैली उठाकर पडोसिन अपने घर ले गयी। बाद में सेठ पुत्र और उसकी स्त्री ने आकर थैली न देख बड़ा अफसोस किया।

चौथे दिन फिर सेठ का लड़का जंगल में आकर घास काटने लगा। उसकी यह दशा देख लक्ष्मी जी ने कर्मदेवता से कहा कि "मैं तो सब कुछ दे चुकी हूँ। बार-बार दिया, फिर भी यह कोरा ही रहा। अब आप कुछ देकर देखिये।" यह सुन कर्मदेवता ने सेठ के पुत्र को तांबे के दो टके दिये यानि उसके रास्ते में दो पैसे फेंक दिये। सेठ ने टके उठाये और कहा कि "आज भगवान् ने हमको टका दिया है टका ही सही। हमारा किसी पर कर्ज तो चाहिये नहीं। इससे पहले बहुत कुछ तो दिया पर लक्ष्मी क्या करे जब कर्म ही सहायक नहीं है।" सेठ ने टके को लेकर घर जाते हुए देखा कि रास्ते में एक आदमी नदी से मछली पकड़ रहा है। उसने एक पैसे की मछली खरीदी। दूसरा पैसा मसाले और तेल के लिये रख लिया। फिर सोचा कि लकडी यहीं से चुनता चलूँ। वहीं एक वृक्ष पर सूखी डाली थीं। उसे तोडने वृक्ष पर चढ़ा तो वहाँ एक चील का घोंसला नजर आया। उसमें हार सहित अपनी पगड़ी पड़ी देखी। उठाकर बड़ी खुशी से घर आया। स्त्री से ज़रा ज़ोर से बोला - सुलक्षिणि! जो चीज खो गयी थी, वह मिल गयी। यह आवाज़

उस पड़ोसिन ने सुनी, जिसने थैली झटक ली थी। उसने सोचा - इसको थैली का हाल मालूम हो गया। चोर की दाढ़ी में तिनका वाली कहावत के अनुसार वह विचारने लगी कि कहीं यह राजपुरुषों से मेरे घर की तलाशी न करा दे ? इससे अप्रतिष्ठा तो होगी ही साथ ही जेल या जुर्माना भी हो जाये। इत्यादि विचारकर उसने वह थैली धीरे से सेठ के घर में डाल दी। इसके बाद ज्यों ही सेठ घर में गया, देखा कि थैली भी पड़ी है। उधर मछली चीरी गयी तो हीरे उसके पेट से निकले। आनन्द हो गया।

भाव यह है कि मनुष्य के कर्म ही सुख-दु:ख को देने वाले हैं। कर्मानुसार सब सामग्री जुट जाती है। यदि कर्म अच्छे न हो या यों कहे कि कर्म सहायक न हो, तो मिली हुई सामग्री भी नष्ट हो जाती है। यदि रह भी जाये तो अपने किसी काम की नहीं रहती।

कर्मवीरों का कहना ही क्या है? कर्मठों को समुद्र गोष्पदीभूत हो जाता है। वे चाहें तो सुमेरु को फूँक से उड़ा दें।

सब कुछ कर्मानुसार ही होता है । मनुष्य कर्म न करे और इष्टफल की आशा करे तो उसकी भारी भूल है। सुख सब चाहते हैं, किन्तु वह मिलता नहीं है, पुण्यों से और पुण्य सत्यकर्मों से निष्पन्न होते है।

''कर्म प्रधान विश्व करि राखा'' आदि के कथनानुसार कर्म ही सब इष्टसिद्धियों का प्रधान साधन है। किसी मनुष्य को दूसरे के ऐश्वर्य को देखकर ईर्ष्यालु नहीं होना चाहिये।

सब कुछ कर्म की महिमा से सम्पन्न हो सकता है अत: सत्कर्मानुष्ठान करो।

निदेशक

पद्मश्री नारायणदास रामानन्द

दर्शन अध्ययन एवं शोध संस्थान, जयपुर(राज.)

योगा इन डेली लाईफ फाउण्डेशन

एक परिचय

'योगा इन डेली लाइफ फाउण्डेशन' एक अन्ताराष्ट्रिय संस्था है, जिसकी स्थापना सन् 2002 ईस्वी में महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी महाराज के कर कमलों से हुई। इस संस्था का मुख्यालय, नई दिल्ली में स्थित है। इस संस्था के द्वारा विविध आश्रमों का संचालन किया जा रहा है। जो भारतीय संस्कृति–धर्म–ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय है। शोध के माध्यम से इनके संवर्धन में संस्था का अभूतपूर्व योगदान रहा है।

आश्रम परम्परा भारतीय संस्कृति के पल्लवन में अतीत से ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है तथा इस संस्था के अध्यक्ष महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी की आचार्यपरम्परा जो गुरुशिष्यपरम्परा के रूप में सतत् प्रवाहित होती रही, का उल्लेखनीय योगदान रहा है। संस्था के प्रगतिपथ पर उन्मुख गतिविधियों से इन आचार्यों का अवदान वस्तुतः चिरस्मरणीय रहेगा।

(क) आचार्य परम्परा–

1) परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
2) परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी
3) महाप्रभु श्री दीपनारायण जी
4) परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी
5) सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी
6) महामण्लेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वर पुरी

(ख) आश्रम परम्परा

1) श्री देवपुरी जी आश्रम, महरौली, नई दिल्ली
2) श्री देवपुरी जी आश्रम, कैलाश, सीकर (राज.)
3) श्री देवपुरी जी आश्रम, शिवबाग, बड़ी खाटू, जिला नागौर (राज.)
4) ओ३म् आश्रम, जाडन, जिला पाली (राज.)
5) धर्मसम्राट् स्वामी माधवानन्द आश्रम, नीपल, जिला पाली (राज.)
6) विश्वगुरु दीप आश्रम, जयपुर

विश्वगुरुदीप आश्रम, शोध संस्थान, जयपुर

एक परिचय

योगा इन डेली लाइफ फाउण्डेशन द्वारा संस्थापित एवं संचालित विश्वगुरुदीप आश्रम जयपुर में दिनांक दिसम्बर, 2016 को महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी जी के प्रयत्नों से तथा महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी के आशीर्वाद से विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर की स्थापना की गयी। यह शोध संस्थान जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर से सम्बद्ध है तथा भारतीय पुराविद्याओं के शोध हेतु सक्रिय है। शोध संस्थान में निम्नांकित शोधपीठ स्थापित है जिनमें निरन्तर शोधकार्य एवं व्याख्यानमालाएँ आयोजित की जाती रही हैं–

(1) वेदपुराणस्मृति शोधपीठ
(2) भाषामीमांसा एवं शास्त्र शोधपीठ
(3) धर्मदर्शनसंस्कृति शोधपीठ
(4) संस्कृत प्रचार–प्रसार शोधपीठ
(5) योगविज्ञानशोधपीठ